प्रेरणा-स्रोत

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी

प्रकाशकीय :

मा की गोद मे चार दशक से भी अधिक का समय कैसे व्यतीत हुआ ? कुछ पता ही नही चला। मेरे और मेरे परिवार के इर्द-गिर्द चहु ओर प्यार और उल्लास का वातावरण छाया हुआ रहा। आज वह नही हैं तो प्रतीत हो रहा है कि कुछ खो चला हू। व्यावसायिक एवं सामाजिक अस्तित्व मे बध कर भी ऐसा लग रहा है कि मैं वह नही हूं, जो पहले था। एक छाया मेरे सर से उठ चली है। मुझे लग रहा है कि बहुत कुछ है, लेकिन प्यार की वह थाह नही है।

मा के जीवन की अनेक मधुरतम स्मृतिया उभर रही हैं। वास्तविकता यह है कि मा एक ज्वलन्त स्मृति है। युग-युग मे रही है और युग-युग तक वह एक अविभाज्य शक्ति के रूप मे उद्बोधित एव स्मरणीय रहेगी। 'स्मृति' का प्रकाशन उसी प्रेरणा का एक प्रतीक मात्र है। यह "इचरज ट्रस्ट" का प्रथम पुष्प है। हमारी योजना है कि इसके माध्यम से हम प्रतिवर्ष आध्यात्मिक एव जीवन दर्शन की भावना से प्रेरित एक "वार्षिकी" (पुस्तिका) लोक-साहित्य एव लोक-समाज को समर्पित कर सकें। मा के प्रकाश-पुञ्ज जीवन से प्रेरित 'मा' को यही एक सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

'मा' आज नही है। यह अभाव मेरे लिए एक 'अन्धकार' से कम नही है। लेकिन मेरा और मेरे परिवार का सौभाग्य है कि इस अन्धकार मे भी मेरे पूज्य एव सहृदय पिता का सान्निध्य हमे एक मार्ग दर्शक के रूप मे प्राप्त है। उनके आदर्श पितृत्व मे हमे मां का धार्मिक उद्घोष सदैव सुनने को मिलता है। यही एक वरदान है।

इससे अधिक सौभाग्य है कि अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी का वरदहस्त मुझे और मेरे परिवार को प्राप्त है। 'मा' ने

उन्ही के सान्निध्य मे और उन्ही के सहारे जीवन जीया, अपने परिवार को विकसित किया और अपना अन्तिम समय भी उन्ही के श्री चरणो मे समर्पित कर एक आदर्श श्राविका का गौरव प्राप्त किया। यह एक मशाल है, जिसकी रोशनी मे हम स्वयं एक प्रकाश का अनुभव कर रहे हैं। यह वह प्रकाश है, जो हमारे लिए एक जीवन है, एक प्रेरणा है। 'स्मृति' का प्रकाशन भी उसी प्रेरणा की एक प्रति कृति मात्र है।

'स्मृति' मा के 'जीवन-सस्मरण' के साथ, मा की आध्यात्मिक भावनाओ से प्रेरित उन रचनाओं का एक सकलित पुष्प है—जिसमे भारतीय सस्कृति और जैनत्व के साथ अणुव्रत हैं, सर्वोदय हैं, तुलसी और तुलसी की वाणी के अतिरिक्त गाधी और गाधी का विचार-दर्शन भी है। संक्षेप मे यह पुस्तक आध्यात्मिक एव लोक-दर्शन से युक्त नित्य स्मरण की एक अच्छी दैनिक स्मरणिका का एक प्रयत्न मात्र हैं। शीघ्रता मे कुछ भूले रह गई हैं। उसके लिए मैं क्षमा ही माग सकता हू।

यदि सच कहू तो इस पुस्तक के सम्पादन में मेरे अनन्य मित्र एव अणुव्रत समाज के जाने माने कार्यकर्त्ता श्री देवेन्द्रभाई कर्णावट का मुझे अप्रतिम योग मिला है। बहुत कुछ उन्हीं के परिश्रम का फल है कि यह पुस्तक विचार के बाद इतने कम समय में तैयार हो सकी है। इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हू।

मा की जीवन-प्रेरणा के साथ यह पुस्तक अध्यात्म की जीवन-दिशा मे किञ्चित मात्र भी सहायक हो सकी तो मैं अपने को धन्य समझूंगा और मा की प्रेरणा का प्रसाद मानकर तुष्टि का अनुभव करुंगा।

दीपावली, १९७८ —सिद्धराज भडारी
दिग्विजय नगर, अहमदाबाद

अनुक्रम :

दृढ़ संस्कारों से प्रेरित परिवार

[श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट]

आज के पच्चीस वर्ष पूर्व जब मैं कलकत्ता से 'जनपथ' साप्ताहिक का सम्पादन करता था, तब जोधपुर के प्रमुख अध्यात्म-निष्ठ समाज सेवी श्री बलवन्तराज भडारी से मेरा सम्पर्क हुआ। यह सम्पर्क उसके बाद और भी बढ चला, जबकि भडारीजी ने गाधी सेवा सदन के लिए महानगरी की बहु मजिली अट्टालिकाओ मे माथ घूम-घूम कर आर्थिक सकलन में अपना कठिनतम योग प्रदान किया और आगे के लिए उन्होंने अपने सुपुत्र एव भावना शील व्यक्तित्व श्री सिद्धराज भडारी से मेरा सूत्र सम्बन्ध स्थापित किया। तब से यह सम्बन्ध निकट से निकटतम होता गया। यहा तक कि मैं उनके पारिवारिक जीवन मे घुल-मिल सा गया।

भडारी परिवार के इस निकटतम साहचर्य मे मैं जितना निकट गया, उतना ही उनकी बढती हुई प्रगति के साथ धार्मिक एव सामाजिक आदर्शों से गूथी हुई शृखला को देख कर आश्चर्यचकित रह गया। चहुओर फैला हुआ परिवार, साधनो के विकास क्रम मे कही पीछे नहीं, वरन् उत्तरोत्तर गतिशीलता, तिस पर भी अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी और उनकी धार्मिक प्रवृत्तियो में अभूतपूर्व श्रद्धा और उस पर यह सर्वमान्य विश्वास कि धर्म ही जीवन-विकास की एक मात्र धुरि है। यह है तो बहुत कुछ है और यह नही है तो बहुत कुछ पाकर भी कुछ नही है। इतने समुन्नत और दृढ सस्कारो के पीछे आखिर कौनसी शक्ति है, जो इन सब को एक ही सास्कृतिक परम्परा मे निभाये जा रही है। निश्चित रूप से यह गृहलक्ष्मी और गृह माता की तपस्या है, जो आज नहीं है, लेकिन 'इचरज' के रूप में जो आज भी इनको पारिवारिक आदर्शों से बाध कर चल रही है।

○ मां एक शक्ति : मां एक प्रेरणा

भारत मे जब कोई बीमार होता है, तो उसके मुंह से 'मां' शब्द निकलता है। यही हिन्दू के अन्त.करण की पवित्र भावना 'मां' शब्द से प्रकट होती है।

—स्वामी रामतीर्थ

एक आदर्श माता सौ गुरुओ से भी अधिक है।

—जार्ज हरबर्ट

नागरिकता की प्रथम शिक्षा मा के चुम्बन और पिता के प्यार से मिलती है।

—मैजिनी

मैं जो कुछ हू वह मां का बनाया हुआ हू।

—दादा भाई नौरोजी

मां के ममत्व की एक बूद अमृत के समुद्र से भी ज्यादा मीठी है।

—नागोची

मैं जो कुछ भी हू या जो कुछ बनने की आशा करता हू, उसके लिए मैं अपनी मां का ऋणी हू।

—अब्राहिम लिंकन

मां एक शक्ति है। मां एक जीवन-प्रेरणा है।

—दयानन्द सरस्वती

उनके उपवास

मेरे मन पर यह छाप रही है कि मेरी मा साध्वी स्त्री थी। वे बहुत श्रद्धालु थी। बिना पूजा-पाठ के कभी भोजन न करती। हमेशा हवेली (वैष्णव-मदिर) जाती। जब मे मैंने होश सभाला, तब मे मुझे याद नहीं पडता कि उन्होंने कभी चातुर्मास का व्रत छोडा हो। एक बार व्रत के दिनो मे वे बीमार पडी; पर व्रत नही छोडा। चातुर्मास मे एक समय खाना तो उनके लिए सामान्य बात थी। उतने से सतोष न करके एक चौमासे में उन्होंने तीसरे दिन भोजन करने का व्रत लिया था। एक चातुर्मास मे उन्होंने यह व्रत लिया कि सूर्य-नारायण के दर्शन करके ही भोजन करेगी। चौमासे मे अक्सर सूर्य के दर्शन दुर्लभ हो जाते है। जब हम सूर्य को देखते और कहते- 'मा-मा सूरज दिखा', और मा उतावली होकर आती। इतने मे सूरज छिप जाता और मा यह कहती हुई लौट जाती कि "कोई बात नहीं, भाग्य मे भोजन नहीं है।" और अपने काम मे डूब जाती।

—महात्मा गाधी

उनके संस्कार

मातुश्री वदनाजी वृद्धावस्था मे भी सतत् साधना, तपस्या, मौन स्वाध्याय, आसन आदि मे रत रहती। उनकी चर्या, ऋजुता और साधना से मुझे बहुत सतोष था। मेरी दीक्षा मे पूज्य गुरुदेव कालूगणी का तो मुख्य हाथ था ही, उनके बाद ससार-पक्षीय ज्येष्ठ भ्राता मुनि श्री चम्पालालजी तथा मातुश्री वदनाजी का सहयोग था। मैं अपने भाई-बहिनो मे सबसे छोटा था। माता का प्राय अपने छोटे बच्चे पर सहज ही अधिक मोह होता है। फिर भी उन्होंने बडी दृढता के साथ मुझे पूज्य कालूगणी के चरणों में समर्पित किया।

मेरे जीवन मे सबसे ज्यादा सस्कार उनके जीवन के ही आये है। इस-लिए उनको मैं कैसे भूल सकता हू? भारतीय सस्कृति मे कहा गया है — 'मातृदेवो भव' अर्थात् माता देवता के समान होती है। वास्तव मे ऐसी माता देव-तुल्य ही है। —आचार्य तुलसी

मा के कड़े

मैं जब अन्य बच्चो को स्कूल जाते देखता; तो मेरे मन मे भी आता कि मैं भी अग्रेजी पढू। पर स्कूल की फीस के लिए घर में पैसे नही थे। जिस परिवार में कमाने वाला एक तथा खाने वाले दस हो, और वह स्वाभिमानी परिवार हो, तो उसकी स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जिस घर मे पाच रुपये महीने की आमदनी न हो, वहा स्कूल की फीस और पुस्तको का खर्च कहा से आये? फिर भी पिताजी ने मेरा मन रखा और मुझे अग्रेजी पढने के लिए भेजा। मा ने अपने हाथ के कडे पडोसी के यहां गिरवी रख-कर मेरी फीस दी। बाद मे जब कथा-वाचन से पैसे आये, तो वे कडे छुड़वाये गये। इस तरह जैसे-तैसे मेरी पढ़ाई आगे चली।

—मदन मोहन मालवीय

ममता का स्रोत

मुझे प्रारभ से नारी का मातृ-स्वरूप ही आकर्षित करता रहा है, क्योंकि मैं ममता को ही जीवन का आधार मानता हू। यही मातृत्व का सच्चा स्वरूप है। नारी मे कभी-कभी निर्दयता भी प्रकट होती है और इतिहास इस बात का साक्षी है। परन्तु जहा तक मातृत्व का सवाल है, उसमे निर्दयता के लिए लेशमात्र भी स्थान नही है। मातृत्व तो ममता का ही नाम है। समाज-रचना की दृष्टि से भी मैं मातृत्व को विशेष स्थान देता हू। — मोरारजी देसाई

मां का हाथ

मे जे मातृपाणि,
स्तन हते तुले निले
शिशु कादे डरे,
मुहूर्ते आश्वास पाय
मिचे स्तनान्तरे।

मां का ममता भरा हाथ जब बच्चे के मुंह को एक स्तन से छुटाकर दूसरे स्तन तक ले जाता है, तो शिशु विलखता है डरता है। पर दूसरे ही क्षण, दूसरे स्तन से मुंह लग जाने पर वह तुरंत आश्वस्त हो जाता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मां की शिक्षा

मम्मी को गुजरे एक लम्बा अर्सा हो गया। लेकिन जिन्दगी में जब कभी कर्तव्य या अंतरात्मा को लेकर कशमकश अनुभव होती है, तो मुझे फाक और गुड़िया वाली घटना याद आ जाती है मम्मी के बारे में तो क्या कहूं, उनसे तो मैंने बहुत कुछ सीखा और पाया है।

—इन्दिरा गांधी

मां की प्रेरणा

मेरी मां (महारानी तारादेवी) ने मुझे सदा गरीबों का ध्यान रखने की प्रेरणा दी है।

—डा० कर्णसिंह

स्व० श्रीमती इचरजदेवी

दृढ़ धर्मिणी श्राविका

[युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी]

पिछले कुछ वर्षो से मेरे मस्तिष्क मे सहज रूप से स्फुरणा हुई कि महिलाओ का जीवन जितना मूल्यवान है, उसका उचित मूल्यांकन नही हो पा रहा है। पुरुष-प्रधान समाज मे पुरुषो की गौरव-गाथा गाई जाती है और नारी जाति को उपेक्षित कर छोड दिया गया है। इस विचार-तरग ने मुझे प्रभावित किया और मैंने निर्णय ले लिया कि कम से कम अपने धर्म सघ की साध्वियो और श्राविकाओ के जीवन का सही मूल्याकन करने का प्रयत्न हो। बस स्वप्न देखने भर की देर थी, उसके फलित होने मे अधिक समय नही लगा।

महिलाओं के व्यक्तित्व को उजागर करने की शृखला शुरू हुई। मैंने कुछ बहिनो को दृढ़ धर्मिणी श्राविका का सम्मान दिया। पिछले दिनो श्राविका 'स्त्री-रत्न सोहनी देवी पटोलिया' की स्मृति में एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जो महिला जाति के गौरव का साक्ष्य है। राजलदेसर निवासिनी श्राविका विमला देवी डागा की स्मृति मे भी ऐसा प्रयास हो रहा है। इसी शृखला मे श्राविका रतन देवी भण्डारी (श्रीमती बलवन्तराज भण्डारी, जोधपुर) की स्मृति मे 'स्मृति' का प्रकाशन हो रहा है। यह महिलाओ के प्रच्छन्न व्यक्तित्व को सामने लाने का प्रयत्न है। इससे महिला समाज को बहुत प्रेरणा मिल सकती है।

श्राविका इचरज देवी के बारे मे मैं क्या कहू ? मेरी दृष्टि में वह श्रद्धा की सजीव प्रतिमा थी। उन्होंने अपने श्रद्धा बल से समूचे परिवार मे धार्मिक सस्कारो को विकसित कर दिया। यहा तक कि बलवन्तराजजी को भी धार्मिक दृष्टि से इचरजदेवी के जीवन से बडी प्रेरणा मिलती थी। पति-पत्नी दोनो प्रति वर्ष दर्शन करने आते और लम्बे समय तक उपासना करते थे। यहा आकर वे अपनी अस्वस्थता को भी भूल जाते। उनका परिवार सब दृष्टियो से समृद्ध है। उनके सभी लडके शिक्षित है, प्रबुद्ध हैं और ऊचे पदो पर काम कर रहे हैं तथा धर्म सघ के प्रति भी अपना दायित्व समझ रहे हैं।

अपने परिवार में धर्म की सौरभ फैलाने वाली श्राविका ने अपना जीवन भी धर्म स्थान मे ही पूरा किया। मुझे याद है जैन विश्व भारती (लाडनू) का वह मैदान जिसमे उन्होने अपने उज्जवल परिणामो मे अपने पार्थिव शरीर को छोड़ा था। ऐसी 'महिला रत्न' की स्मृति मे किसी ग्रन्थ की प्रस्तुति धार्मिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियो स महत्वपूर्ण है। मैं चाहता हू कि प्रस्तुत ग्रन्थ मे केवल प्रशस्ति ही न होकर बहिन के जीवन सस्मरणो का आकलन हो। क्योंकि सस्मरण साहित्य की मधुर और प्रेरणाप्रद विधा है। समाज ऐसी बहिनो के व्यक्तित्व को समझ कर उसे समुचित आदर दे, यह अपेक्षा है।

गगाशहर

१ अक्टूबर १९७८

ऋृजुता और मृदुता की साधिका

[साध्वी प्रमुखा श्री कनक प्रभा]

परमाराध्य युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी का युग महिला जाति के लिए अभ्युदय का युग है। एक ओर साध्वियो का समुचित निर्माण तो दूसरी ओर रूढ़ियों से ग्रस्त श्राविका समाज का रूपान्तरण आचार्य श्री के क्रान्तिकारी अभियानो की एक सशक्त शृ खला है। आचार्यवर के मन मे मातृजाति के प्रति आदर और इज्जत की भावना है, उसे प्रोत्साहन देने की तड़फ है, उसी का सुफल है कि हमारे समाज की श्राविकाओं ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना लिया है।

जोधपुर निवासी बलवन्तराजजी भण्डारी की धर्म पत्नी इचरज-देवी भण्डारी गत वर्ष लाडनू में दिवगत हुई। कितनी सौभाग्य-शालिनी थी वह बहिन जिसे गुरु-चरणों मे, धर्माराधना के वातावरण मे अपनी जीवन यात्रा को पूरा करने का अवसर मिला। जन्म और मृत्यु जीवन के दो तट है। इन दोनों तटों के बीच बहता हुआ जीवन जितना स्वच्छ हो जाए, उन्नत हो जाए और अन्तर्मुखी हो जाए, उतनी ही जीने की सफलता है।

इचरजदेवी के जीवन में झांकने से ऐसा प्रतीत होता है कि वह ऋृजुता और मृदुता दोनों की साधना कर रही थी। इतने लम्बे परि-चय काल में मैंने कभी उनके चेहरे पर आक्रोश की रेखा तक नही

देखी। आचार्यवर के प्रति उनके मन मे इतनी गहरी श्रद्धा थी कि अनायास रूप से गुरुदेव के मुखारविन्द से निकले शब्दो को वह अपनी जीवन-यात्रा का सम्बल मानकर चलती थी। वह चाहती थी कि उनका पूरा परिवार धार्मिक बना रहे, पर वह बच्चो पर अपने धार्मिक मतव्य थोपती नहीं थी। इस बात का उनके बच्चो पर बहुत अच्छा प्रभाव था। यही कारण था कि वे लोग उनके प्रति समर्पित रहते थे। बलवन्तराजजी भी उनके अभाव मे धर्माराधना और उपासना मे थोडी रिक्तता सी अनुभव करते है। क्योकि इस क्षेत्र मे वे दोनो एक दूसरे के पूरक थे।

उनके पुत्रो ने उनकी स्मृतियो को 'स्मृति' मे स्थायी करने का जो सकल्प लिया है, वह वह एक प्रशस्त मार्ग है। इचरजदेवी का जीवन उनके पारिवारिकजनो के लिए आलोक स्तम्भ बनेगा ही, अन्य लोग भी उससे प्रेरणा प्राप्त करेंगे, ऐसा विश्वास है।

गगाशहर

१ अक्टूबर १९७८

आदर्श गृहलक्ष्मी

[श्री बलवन्तराज भण्डारी]

मेरा विवाह बहुत ही अल्प आयु में हो गया था और हमारा वैवाहिक जीवन ५५ वर्षों का दीर्घ, सुखी, समृद्ध और यशस्वी जीवन रहा। उनका पीहर जोधपुर का सम्मानित घराना था और मेरा परिवार भी उसी के समान प्रसिद्ध। नये घर में आकर वे पूर्णत घुल मिल गयी। मैं अपने पिता का सबसे छोटा पुत्र था और हमारा परिवार भी संयुक्त परिवार होने के नाते काफी विशाल परिवार था। मुझे याद नहीं पड़ता कि परिवार में किसी से उनकी कभी खट-पट या मनमुटाव हुआ हो। वे परिवार में पूर्णत: घुल मिल गयी थी और उसके प्रत्येक सदस्य का श्रद्धापूर्वक सम्मान और आदर करती थी। मेरे पूजनीय पिता और माता की जो सेवा उन्होंने की, आज के युग में उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह हमारे माता पिता का ही आशीर्वाद रहा कि हम दोनों का जीवन सदैव सुखी और संकटविहीन रहा। मैं तो प्राय कलकत्ता में ही रहा करता था, इसलिए जोधपुर में पूरे परिवार की देख-भाल का दायित्व मेरी स्वर्गीय धर्मपत्नी पर था। वे पढ़ी लिखी कम थी, पर उनके जीवन में जितनी व्यावहारिकता थी उतनी ही आदर्श थी। उन्होंने सभी सन्तान का पूरा उत्तरदायित्व निष्ठा और प्रेम के साथ सम्पादन किया। कभी किसी को यह सोचने का अवसर ही नहीं [illegible]

कि मैं जोधपुर के बाहर रहता हू। आज के युग मे ऐसा दायित्व निर्वाह बहुत कम देखा जाता है। मेरे जीवन मे उनका आगमन सदैव शुभ रहा। वे धर्मपरायण थी। हमारे धर्मगुरु मे उनकी अटूट श्रद्धा थी। नियमित रुप से सामायिक करना उनका परम कर्त्तव्य था। भारतीय जीवन और समाज सहिता मे स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी कहा जाता है। वे सही अर्थों मे मेरी अर्द्धाङ्गिनी थी। उनकी दृढता और सहिष्णुता भी बेजोड थी। अहिसा और सत्य का उन्होंने आजीवन पालन किया। जीवन मे उन्होंने सदैव यह चेष्टा की कि मन और वचन के द्वारा किसी को पीडा नही पहुचे और इसी प्रकार दूसरों के द्वारा पहुचाई हुई पीडा भी वे अत्यन्त धैर्य और सहिष्णुता के साथ सह लेती थी। आचार एव व्यवहार से किसी को यह अनुमान भी नहीं हो पाता था कि वे पीडित हुई है। गृहिणी का आदर्श-गृह होता है, और वही गृह लक्ष्मी कही जाती है। वे सही अर्थों मे गृह-लक्ष्मी थी। जितना स्नेह उन्होने सबको दिया और जिस समता भाव से उन्होने परिवार के प्रत्येक सदस्य को देखा, वह आज के यु सम्भव नहीं है। वे प्रेम की साक्षात् प्रतिमा थी। और यही कारण है कि अपने छोटे भाइयो को भी वे पुत्रवत् ही समझती थी और जीवन मे सदैव प्रत्येक स्वजन को यही समझा।

कुछ वर्षों मे वे व्याधिग्रस्त हो गयी थी और औषधियो से ही उनका जीवन चलता था पर इन व्याधियों के मध्य भी उनमे आत्म विश्वास, धार्मिक आस्था और श्रद्धा यथावत रहे। उनकी इच्छा थी

कि वे हमारे धर्म गुरु के सामने ही शरीर छोड़ें। प्रभु ने उनकी यह इच्छा भी पूरी की। उनके जीवन को आदर्श मानकर हमारे परम श्रद्धेय आचार्य गुरु श्री तुलसी ने यह दोहा कहा जो उनके श्रावक धर्म और चरित्र का प्रमाण है:

इन्दरज अचरज श्राविका, पायी परम समाधि
विश्वभारती प्रांगण में मेटी आधि व्याधि।

यह उनका प्रथम पुण्य वर्ष है और मुझे अपना दीर्घ वैवाहिक जीवन याद आ रहा है। पता नहीं मेरा जीवन भी कब तक चलेगा। उनकी प्रथम मृत्यु तिथि पर मेरी एक ही आकांक्षा है कि मेरा सम्पूर्ण परिवार—पुत्र, पुत्रियां, पौत्र-दौहित्र आदि उनके जीवन से प्रेममय आचरण और समभाव की शिक्षा लें और उनके जीवन को आदर्श मानकर आगे बढ़ें। यही उनको सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

कलकत्ता
२-१०-७८

मेरी धर्मनिष्ठ आदर्श मां

[श्री सिद्धराज भण्डारी]

मेरी मा का जन्म ११ सितम्बर १६११ को जोधपुर मे हुआ था। अपने पिता की वह सबसे छोटी और प्यारी पुत्री थी। इसके पूर्व छ बहिनो की अकाल मृत्यु से उनको अपने परिवार का सर्वाधिक प्रेम मिला था। इनके पिता श्री चन्दनमल लोढ़ा तत्कालीन जोधपुर रियासत मे नाबालिग महकमे के इन्चार्ज थे। इनका तथा इनके परिवार का समाज मे अच्छा प्रभाव तथा राज्य मे सम्मानपूर्ण स्थान था।

० आदर्श दाम्पत्य

मेरी मा श्रीमती छगन देवी का विवाह १३ वर्ष की अल्पायु मे ही हो गया था। मेरे पिता श्री बलवन्तराज भण्डारी व्यावसायिक प्रवृत्ति के साथ धार्मिक विचारो से ओत-प्रोत है। दोनो की आध्यात्मिक प्रवृत्ति मे अद्भुत समन्वय था। जैन-धर्म मे इनकी अटूट श्रद्धा रही है। गार्हस्थ्य जीवन निभाते हुए भी आध्यात्मिक दृष्टि को प्रथम स्थान देते थे। यही कारण है कि पारिवारिक जीवन मे कभी किसी तरह का मानसिक अथवा सामाजिक द्वन्द उत्पन्न नही हुआ। यत्किञ्चित ऐसा प्रसग आ भी गया तो धर्म, गुरु एव देव की आराधना को मुख्य मान उसे सुलझा लेते थे। ४७ वर्ष की आयु मे दोनो ने आजीवन ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लिया था। उनका तेज ६८ वर्ष की आयु मे भी मृत्यु पर्यन्त उनके चेहरे पर विद्यमान था।

० धार्मिक प्रवृत्ति

मेरा परिवार जैन धर्म में तेरापथ का अनुयायी रहा है। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी मे उनकी श्रद्धा अनुकरणीय थी। प्रात जागरण एव रात्रि-शयन के समय नवकार मत्र स्मरण एव आचार्य श्री तुलसी के सचित्र दर्शन के बिना अन्न तो क्या पानी भी मुह मे नहीं डालती थीं। कम से कम दो सामायिक नित्य करती थी। सामायिक उनके जीवन की साधना थी। महीने मे दो उपवास का क्रम गत २५ वर्षो से सतत् चलता रहा है। बडी से बडी बीमारी अथवा शारीरिक अस्वस्थता मे भी यह अपने व्रत से कभी विचलित नही हुई। रात्रि को अन्न ग्रहण का उन्हे त्याग था। अपने पुत्र-पुत्रियों के विवाह के अवसर पर भी उन्होंने अपने इस संकल्प को नहीं तोड़ा। यह उनके जीवन की विशेषता थी।

० सेवा परायणता

मेरी मा सेवा एव विनय की प्रतिमूर्ति थी। बडो का आदर एवं सम्मान उनके सस्कारो का एक मुख्य अग था। विवाह के उपरान्त पिताजी को व्यवसाय के लिए अधिकतर बाहर रहना पडता था। कलकत्ता उनका मुख्य कार्य क्षेत्र रहा है। घर का समस्त कार्य-भार अधिकतर मा पर निर्भर था, जिसका उन्होने अत्यन्त कुशलता से निर्वाह किया। सास-श्वसुर की सेवा को उन्होंने परम धर्म माना। कभी किसी तरह की शिकायत का अवसर उन्होंने नही दिया। मा की सेवा और नम्रता का ही फल था कि उन्होंने अपनी सास का

हृदय जीत लिया। वहु होते हुए भी उन्हे बेटी की तरह प्यार और विश्वास मिला। लगातार ३५ वर्ष तक उन्हे जोधपुर रह कर परिवार का पोषण करना पडा। लेकिन मा ने इसे सदैव स्वधर्म के रूप मे स्वीकार किया।

0 उच्च सस्कार एवं शिक्षण

मेरी मा सामान्य पढी लिखी नारी थी। लेकिन उन्होंने मेरे सहित सात पुत्रो और तीन पुत्रियो के न सिर्फ शिक्षण वरन् उच्च शिक्षण का पूरा ध्यान रक्खा। मध्य मे एक बार ऐसी परिस्थिति भी आ गई थी कि आर्थिक स्थिति को देखते हुए हमारे उच्च शिक्षण के लिए पिताजी को कुछ सोचना पडा। लेकिन माताजी ने साहस नही छोडा और धैर्य तथा सयम से परिवार का सञ्चालन करते हुए हमारे शिक्षा-क्रम को बनाये रक्खा। यहां तक कि पारिवारिक स्थिति का हमे कुछ आभास भी नहीं होने दिया। यह उनके जीवन की सबसे कठिनत्तम परीक्षा थी। लेकिन वे उसमे सफल हुई।

आज हम भाई-बहिनो मे अच्छे सस्कार के साथ शिक्षा का जो स्तर है, वह मा की सतत सेवा और कष्ट सहिष्णुता का परिणाम है। आज हम भाइयो मे व्यवसाय निपुणता के साथ कई उच्च पदो पर है, इसके पीछे मा की सुखद आकाक्षा एव कठोरत्तम जीवन-चर्या है।

० अणुव्रती जीवन

मेरी मा जहा अत्यधिक धर्म परायण थी वहा अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी की अन्यतम भक्त थी। आचार्य श्री द्वारा

अणुव्रत का उद्बोधन होने पर वह इस आन्दोलन में सम्मिलित हुई। अणुव्रत-आन्दोलन के प्रारम्भ मे वह अणुव्रती थी। अणुव्रती जीवन का निर्वाह उसने पूरे संकल्प और निष्ठा के साथ किया और अनेक भाई-बहिनों को उनने अणुव्रती बनने की प्रेरणा दी। जीवन के प्रत्येक क्रम में वह संयम एव अणुव्रत का ध्यान रखती थी। अपने परिवार और बच्चो मे भी अणुव्रतो की सतत् प्रेरणा और संस्कार देती रहती थी। व्रतो को वह प्राणो से भी अधिक मान कर चलती। यह उनके अणुव्रती जीवन की आदर्श प्रक्रिया कही जा सकती है।

• पर्दा बहिष्कार

अणुव्रती जीवन मे प्रवेश करने के साथ ही मा ने पर्दा प्रथा का बहिष्कार कर दिया था। सामाजिक जड़ता एव रूढ़िवाद मे भी उनका विश्वास नही रह गया था। यहा तक कि हमारे बाद दो-तीन विवाहो मे मां अग्नि संस्कार की परिपालना मे नही बैठी। वृहत्-भोज, मृत्यु-भोज आदि किसी कुप्रथा मे भाग नही लेती थी। अधिकतर आध्यात्मिक प्रवृत्ति मां की हो चली थी। इसलिए वह अत्यन्त विवेक से अपनी जीवन चर्या चलाती थी।

• अन्ध विश्वास से दूर

जैन-धर्म एव आत्मा-साधना के अतिरिक्त धर्म के बाह्य आडम्बर एव क्रिया कलापो मे मेरी मां का कोई विश्वास नहीं था। यहा तक कि दो दशक से उन्होंने दीपावली पूजन का भी परित्याग कर दिया था। दीपावली पर लक्ष्मी-पूजा के स्थान पर उन्होने उपवास एव महावीर-स्मरण का क्रम बना लिया था। लक्ष्मी को गौण माना, भोग को महत्व नही दिया और त्याग को प्रमुखता दी, यह उनके विवेक पूर्ण जीवन यापन का एक उदाहरण है।

० साहस की प्रतिमूर्ति

मेरी मा साहस की प्रतिमूर्ति थी। द्वितीय विश्व युद्ध के समय पिताजी कलकत्ता से जोधपुर आ गये थे। जोधपुर मे इन्होने जो व्यवसाय किया, उससे एक लाख से अधिक का नुकसान उठाना पडा। उस समय की स्थिति मे यह नुकसान बहुत बडा था। लेकिन मा ने पिताजी के समक्ष अपने सर्व आभूषण रख दिये, और कहा कि— आप हिम्मत नही हारे। श्रम ही मनुष्य का जीवन है। आत्म-विश्वास है तो सब कुछ खो देने पर भी सब कुछ पुन लौट आयगा। मा के इन शब्दो का पिताजी पर बडा असर हुआ। युद्ध के बाद कलकत्ता गये और अपने व्यवसाय मे रम गये। उसी का परिणाम है कि सब कुछ ठीक हो चला। आज जो परिवार की प्रतिष्ठा है उसमें मा का योगदान कभी भी विस्मृत नही किया जा सका।

० अन्तिम क्षण

मा को अपनी मृत्यु का आभास पहले ही हो चला था। उन्होने छ माह पूर्व मुझे इगित से कह दिया था कि अब मेरा कलकत्ता आगमन नही होगा। वही हुआ। आचार्य श्री के प्रति उनकी अगाढ निष्ठा थी। उनका अन्तिम जीवन आचार्य श्री की शरण मे बीता। पिताजी के साथ मेरा भी अन्त समय में मिलन हो गया था। धर्म चर्चा लिए हुए जैन विश्व भारती के प्राङ्गण में महावीर निर्वाण दिवस पर ११ नवम्बर १६७७ को उन्होने अपना शरीर त्याग दिया। इस अवसर पर आचार्य श्री ने अपनी समवेदना प्रकट करते हुए कहा—

> उज्ज्वल अचरज श्राविका, पायी परम समाधि।
> विश्व भारती प्राङ्गण मे, मेटी आधि व्याधि ॥

मेरी अच्छी सास

[श्रीमती जतन भंडारी]

मेरा विवाह १९५० में हुआ था। उस समय मेरी आयु १५ वर्ष से भी कम थी। मुझे एक ओर प्रसन्नता थी वहा दूसरी ओर अज्ञात भय भी था कि अपने ससुराल में मुझे किस वातावरण मे रहना होगा और किस-किस से क्या सुनना होगा ? लेकिन मेरी सास ने मुझे बहुत प्यार दिया। बोलना तो क्या, कभी किसी तरह का उपालम्भ तक उन्होंने मुझे नही दिया। सदैव मुझे बेटी की तरह रखा और पुत्री के समान ही माधुर्य मुझे प्रदान किया, जिसे मैं कभी विस्मृत नही कर सकती। वह मेरी दूसरी मा थी।

लगभग १५ वर्ष तक मुझे अपनी सास के सान्निध्य मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनसे मैंने बहुत कुछ सीखा। पारिवारिक शिष्टाचार के अतिरिक्त धार्मिक सस्कार के जो कुछ अकुर मेरे में विद्यमान है, वह सब कुछ उन्ही की देन है।

अपनी अन्तिम [illegible] यात्रा मे भी उन्होंने यही कहा—धर्म को जीवन का मुख्य आधार मानना। आचार्य श्री तुलसी को अपना गुरु मानते हुए जैन धर्म के प्रति अपनी निष्ठा बनाये रखना और बच्चो को उसी सस्कार में ढालना। आत्म-धर्म ही सबके कल्याण का प्रतीक है।

'बासा' जो अब नहीं रही

[श्री चांदमल लोढा, मुख्य न्यायाधीश आसाम]

स्वर्गीय आदरणीया बहन श्रीमती इचरज बाईसाब की याद उनके स्वर्गवास के उपरान्त प्रथम रक्षाबन्धन के त्योहार पर ओर अधिक ताजा हो रही है। हम तीनो भाइयो के बीच वह हमारी एक ही बहिन सी थी जिन्होंने हम को मां का स्नेह व प्यार दिया। हम उनको 'बासा' कह कर पुकारा करते थे। वे हम तीनो मे बड़ी थी।

मुझे मेरे बचपन के वे दिन याद आते है, जब वे मुझे अपनी गोद मे लेकर खिलाया करती थी और साथ ही मेरी मां को अपने घरेलू कार्य मे भी पूरी सहायता दिया करती थी।

उनका स्वभाव अत्यन्त सरल व शान्त था। धार्मिक प्रवृत्ति तो उनमे शुरु से ही थी। बाल्यकाल मे मुझे अच्छी तरह याद है कि वे जब भी समय मिलता धार्मिक पुस्तक पढ़ने बैठ जाती और फालतू की बातो मे नही खोती थी।

उनके विवाह के पश्चात् वे काफी वर्षो तक जोधपुर में ही अपने सास-ससुर के पास रही। हालांकि मेरे जीजाजी उन दिनो कलकत्ता मे व्यवसाय करते थे। कारण यह था कि मेरे जीजाजी की यह इच्छा थी कि वे अपनी सास-ससुर की सेवा में जोधपुर ही रहे क्योंकि उनके सास-ससुर उन दिनो में वृद्ध हो चले थे। मुझे

आज भी पूरी तरह याद है कि 'वासा' ने कभी जीजाजी से यह आग्रह नहीं किया कि उन्हें कलकत्ता साथ ले जाय और अन्त में जब मेरे जीजाजी के माता-पिता का देहान्त हो गया तभी से वे कलकत्ता सपरिवार रहने लगी। उन्होंने अपने सास-ससुर की सेवा में मेरे जीजाजी की अनुपस्थिति में भी कोई कोई कसर नहीं रक्खी।

वासा का अपने परिवार पर अपार स्नेह था और साथ ही अपने बड़े परिवार का पालन-पोषण करने के साथ साथ उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन की ओर भी पूरा ध्यान दिया और उस दशा में कभी उदासीनता नहीं आने दी—वे कहीं पर भी होते, कैसे भी कार्य में लगे होते, उनकी धार्मिक दिनचर्या से उनका ध्यान किसी प्रकार विचलित होते मैंने नहीं देखा। सामयिक, प्रतिक्रमण इत्यादि में वे कभी चूकने वाली नहीं थी। जीजाजी अपने व्यवसाय में कितने भी व्यस्त रहते, किन्तु आचार्य श्री की सेवा में जहां भी आचार्य श्री विराजते हों, उन दोनों का जाना अनिवार्य और निश्चित था। इसका कारण मेरे विचार में वासा का आग्रह ही था। उनका धर्म-प्रेम इतना अगाध था कि उनकी अन्तिम श्वास भी आचार्य श्री की सेवा में लाडनूं में ही निकली। धन्य है ऐसी महान् आत्मा! उनकी याद मुझे जीवन भर रहेगी और मुझे धर्म की ओर प्रेरित होने में सहायता देगी।

दया और त्याग की प्रतिकृति

[श्री कल्याणमल लोढा, प्राध्यापक कलकत्ता विश्व वि०]

दिवगत वहिन पर सस्मरण के रूप में कुछ भी लिखना मेरे लिए अत्यन्त कठिन और दु साध्य है। हम तीन भाइयो के बीच में एक ही वहिन थी और वे सबसे बडी थीं। यो तो मेरे पूज्य पिता के सात पुत्रिया हुई पर सभी का अल्पायु में ही देहान्त हो गया। केवल तीन ही बची थी, जिसमें भी दो प्रौढ अवस्था में चली गयी। हमारे लिए वे वहिन ही नही मातृवत् थी और उनका स्नेह भी हमें इसी रूप में प्राप्त हुआ था। मैंने जीवन में इस प्रकार का अकृत्रिम और पवित्र स्नेह बहुत कम देखा है। उनके लिए पुत्रो और भाइयो में कोई अन्तर नहीं था, वे भावनाओ की पू जीपति थी और उनका सारा जीवन स्नेह एवम् पवित्र भावनाओ की रत्न-मजुषा था। आज उनके स्वर्गारोहण को प्राय एक वर्ष हो गया है, पर सम्भवत कोई भी दिन ऐसा नही रहा जब उनकी पवित्र स्नेहमयी स्मृति हमें नही आयी हो। वे कलकत्ता में रहती थीं और इस नाते मेरा उनसे व्यक्तिगत सान्निध्य और नैकट्य भी अधिक रहा। यदि कार्यवश तीन चार दिनों तक उनसे सम्पर्क नही हो पाता, तब वे स्वय दूरभाष द्वारा या आकर पता लगा लेती थी और बहुत ही मीठे शब्दों में उलाहना भी देती। पीहर में किसी का कुछ दिनो से कोई समाचार नहीं मिलता, तो वे विकल हो उठती; यदि किसी को सामान्य ज्वर

भी आता, तो भी वे घबरा जाती। उनकी यह संवेदनशील प्रकृति एक विशिष्ट रचनात्मक भूमिका लिए हुए रहती। उनका स्नेह केवल भावावेश या दिखावा मात्र नहीं था, वरन् उसमें जीवन की सहज और सामान्य प्रक्रिया स्वतः सिद्ध थी। भावना प्रधान संवेदनशीलता के अतिरिक्त उनकी दूसरी विशिष्टता सहज आत्मीयता और लोकोपकार की भावना थी। वे किसी का दुःख नहीं देख सकती थी। कहीं कोई दुर्घटना हुई हो या किसी को कहीं कोई पीड़ा पहुंची हो तब वे आत्मीयता के कारण घबरा जाती थी। इतने भावनाशील व्यक्तित्व के साथ उनकी सहिष्णुता और सूझ-बूझ भी अद्भुत थी। कठोर से कठोर समय में भी उन्होंने आत्म-विश्वास नहीं खोया और जीवन की चुनौतियों और उसके संघर्ष का दृढ़ता से सामना किया। वे नीलकण्ठ के समान विष को पीना और पचाना दोनों जानती थी और यही कारण है कि उनके व्यक्तित्व में सहजता के साथ-साथ गम्भीरता और दूरदर्शिता विद्यमान थी। गहरे से गहरे आघात को, निकट से निकट व्यक्ति की उपेक्षाओं को, स्वजनों-परिजनों के पीड़ा दायक व्यवहार को भी न जाने किस शक्ति के द्वारा वे हंसकर लेती थी और हमें ऐसा लगता था कि उनमें सचमुच चट्टान की सी दृढ़ता थी, जो उत्ताल तरंगों को भी हंसकर-अडिग भाव से झेलती रहती है। यही तो नियति है। यह सही है कि उनको शिक्षा-दीक्षा बहुत कम हुई पर उन्होंने अपने जीवन को ही अनुभवों और आदर्शों का विद्यालय बनाया था। उन्होंने जो सीखा और पाया, यह अपने जीवन से ही।

ईश्वर और धर्म मे उनका अटूट विश्वास था। ऐसी आस्था जीवन को शक्ति और दृढता देती है- वह मनुष्य को नैतिक मार्ग पर चलने का सम्बल प्रदान करती है। उनका धर्माचरण केवल बाह्य विधान नही था, वरन् उसमे आतरिक श्रद्धा और विवेकशीलता भी विद्यमान थी। उन्होने धर्म को जीवन के प्रकृत धरातल पर उतारा-उसका अनुसरण किया और उसीमे अपने को ढाला। उनकी धर्म प्रियता किसी सकीर्ण परिधि मे नही बधी रही। वे सभी धर्मों के पर्वों का उदारता से सम्मान और पालन करती थी फिर भी यह सही है कि आचार्य श्री तुलसी और तेरापथ सम्प्रदाय मे उनका सर्वाधिक और सम्पूर्ण विश्वास था। ऐसी गुरु-भक्ति विरलो में होती है।

सामाजिक दृष्टि से हमारा परिवार 'आधुनिक' नही था। हमारा लालन-पालन मध्ययुगीन परम्पराओ में हुआ था। पर्दा, बाल-विवाह, नारी शिक्षा और आधुनिक जीवन का बोध अभाव, सयुक्त-परिवार मे विश्वास आदि। मेरी पूज्या बहिन में आश्चर्यजनक रूपान्तरण और युगानुकूलता आयी। ऐसा परिवर्तन और समायोजन उन्होने किया कि उन्हे देख कर उनके जीवन की पूर्व पीठिका का भी अनुमान नही हो सकता था।

उनकी एक और विशेषता थी कि सूक्ष्म दृष्टि। वर्तमान के साथ साथ भविष्य को भी सही स्तर पर वे समझ लेती थी। मुझे याद है कि एक बार जब मेरे बहनोई साहब किसी अप्रत्याशित

आर्थिक संकट से गुजरे, तब उन्होंने अद्भुत साहस, त्याग और समता का उदाहरण दिया और उन्हे सट्टा करने की मनाही की। इस का यह परिणाम हुआ कि द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के साथ ही वे पुन समृद्ध और वैभव सम्पन्न हो गए। सचमुच वे गृह लक्ष्मी थी।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका जीवन ही साधना होता है, जिनका अस्तित्व समूचे परिवार को सुखी और समृद्ध बना देता है, जो जीवन में पूर्व पुण्य कर्म के कारण कभी दुःख, अभाव या आघात या क्लेश नहीं झेलते-मेरी दिवगत बहिन के लिए भी यह अक्षरशः सत्य है। उन्होंने अपने विशाल परिवार में कभी किसी का दु.ख नहीं झेला, जब तक वे रहीं, सुखी रही। सयोग ही कहें कि उनके नवजात प्रपौत्र का देहान्त भी उनकी मृत्यु के कुछ ही घण्टों के पश्चात् हुआ। उनकी अन्तिम इच्छा थी कि वे किसी धर्म स्थान में अपने धर्म गुरु और साधु—साध्वियों के बीच मे दिव्य नवकार मंत्र के साथ ही जीवन की अन्तिम सांस लें- ईश्वर ने उनकी यह इच्छा भी पूर्ण की और उनकी इहलीला अपने गुरु आचार्य तुलसी के ही श्री चरणो में समाप्त हुई। उनके लिए रक्षा बन्धन और भैया दूज भाइयो की मगलश्री के पावन पर्व थे। उस दिन मातृ द्वितीया थी और उसी दिन हमारी अद्वितीय बहिन का स्वर्गारोहण भी हुआ। वे कर्म मुक्त हो गई— उस देव लोक में चली गई जो साधकों, संतों और मुनियों को भी दुर्लभ होता है।

जैन धर्म और दर्शन का मूल मंत्र है 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' यही उनके जीवन का भी मंत्र था। उन्होंने कभी आत्मा के प्रतिकूल-समाचरण नहीं किया, भरसक चेष्टा की कि किसी को पीड़ा नहीं पहुंचे। वे प्रेम की प्रतिमा, वात्सल्य की मूर्ति, दया और त्याग की प्रतिकृति, धर्म की पवित्रता और उच्च जीवन का प्रतीक थी— वैसा जीवन जो सब के लिए स्पृहणीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।

माता का महत्व

[मुनि श्री शोभालाल]

भारतीय परम्परा मे माता का महत्व सर्वोपरि रहा है।

जैन वाङ्मय में भगवान महावीर कहते हैं—

तिण्ह दुप्पडियारं समणा उसो । तंजहा १- अम्मापियरो २- भट्टिस्स ३- धम्मायरियस्स ॥

माता का पुत्र पर वह अनत उपकार होता है कि पुत्र एक नही अनेक जन्मों तक भी सर्वात्मना समर्पित होकर उनकी दैहिक सेवायें करता रहे फिर भी वह उसके उपकार से उऋण नहीं हो पाता।

भाई सिद्धराज भण्डारी की माताजी इचरजदेवी एक ऐसी माता थी जिसने पुत्रों एवं पारिवारिकजनों को अत्यन्त उज्ज्वल संस्कार दिये। ऐसा वही माता कर सकती है जो स्वयं संस्कारवती हो। इचरजदेवी का जीवन धर्म संस्कारों से ओतः प्रोत था, धर्म केवल उपासना के क्षणों में ही नहीं उनके दैनंदिन जीवन व्यवहार में रमा रहता था।

स्वयं आचार्य तुलसी उनके सम्बन्ध में लिखते हैं कि "मेरी दृष्टि में वह श्रद्धा की सजीव प्रतिमा थी, उसने अपने श्रद्धाबल से समूचे परिवार में धार्मिक संस्कारों का पल्लवन कर दिया। यहां तक कि भगवन्तराजजी को भी धार्मिक दृष्टि से इचरजदेवी के जीवन से बड़ी प्रेरणा मिली थी"।

ऐसी धर्म परायणा श्राविका के जीवन प्रसंगों से प्रत्येक व्यक्ति प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

जीवन का वह स्मरणीय क्षण

[श्री वसन्तराज भण्डारी]

मैं सयुक्त राष्ट्र के अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप मे २४ अक्टूबर को मनीला पहुचा था। इसके पूर्व कुछ समय के लिए मैं तेहरान और जिनेवा मे कार्य करता था। मेरे पूज्य पिताजी व स्वर्गीय माताजी का सदैव यह नियम था कि वे दशहरा के आस-पास कलकत्ता से आचार्य श्री के सेवा हेतु, जहा पर भी उनका चातुर्मास होता था वहा चले जाते थे। उनसे मिलने की मेरी प्रबल आकाक्षा थी और यह निश्चय हुआ था कि वे कुछ समय के लिए लाडनू जाते वक्त दिल्ली ठहरेंगे, ताकि मैं उनके दर्शन कर सकू। पहले उनका कार्यक्रम—टीलस्म से दिल्ली पहुचने का था। लेकिन कुछ कारणवश उसे बदल दिया गया। यह वही गाडी थी जिससे इलाहाबाद के पास भयकर दुर्घटना हुई थी। मैं जैनेवा मे निश्चित कार्यक्रम के अनुसार २४ घण्टे की देरी से दिल्ली पहुचा था। रोम मे लुफ्तनासा के विमान अपहरण के कारण मुझे तेहरान जाने मे देरी हो गई थी।

दिल्ली के आवास मे पूज्या माताजी मेरे यहा विराजे थे। २३ अक्टूबर को सुबह उन्होने सामायिक तथा अन्य धार्मिक कार्यक्रम के बाद मेरे से बातचीत की और आवश्यक पारिवारिक आदेश दिए। शायद उन्हें अपने काल का कुछ ज्ञान था। इसीलिए उन्होने अत्यन्त आत्मीयता से मेरे जीवन का दिशा-दर्शन किया।

१२ नवम्बर की सुबह करीब ८ बजे मनीला के होटल में मेरे पास दिल्ली से टेलीफोन आया। अचानक टेलीफोन आने से मुझे कुछ चिन्ता हुई। मेरे दामाद श्री चन्द्रसिहजी लोढा ने पहले

मुझे बधाई अपने पौत्र होने के विषय में दी और बाद में पूज्या माताजी के अकस्मात लाडनू में निधन हो जाने के समाचार दिये। कुछ क्षणों के लिए मैं हतप्रभ हो उठा। उनका पत्र एक ही दिन पहले मुझे मिला था। हिम्मत कर पूरी बात जानने की कोशिश की और कहा कि मैं आज दिन में हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो रहा हू।

वह दिन एव वह पल आज भी मेरी आखों के सामने घूम रहा है। कितना दुःख भरा व दर्दनाक समय था। एक घंटे तक मैं अकेले मे सिसकता रहा। होटल का फराश जो बाहर सफाई कर रहा था उसे यह प्रतीत हुआ कि मुझे कोई अचानक शारीरिक दर्द हो गया है, आकर मैनेजर को सूचित किया और कुछ ही क्षण में मैनेजर व डाक्टर मेरे कमरे में आये। मैंने उनको बताया कि मैं स्वस्थ हू। मेरी वेदना मानसिक है। कारण कि अभी-अभी मुझे अपने माताजी के निधन का समाचार मिला है। उन्होंने धैर्य व साहस बंधाया। मेरे सहधर्मी भाई श्री मोहनसिंह व उनकी धर्मपत्नी भी उस समय मनीला में थे। मैंने उनको सूचना दी और कुछ समय बाद वे मेरे पास आगये।

मनीला में उसी दिन भयंकर सामुद्रिक तूफान आया था जिसकी वजह से सारा यातायात ठप्प होगया। ४८ घंटे तक घोर वर्षा व तूफान के कारण जनजीवन अस्तव्यस्त हो गया। सभी विमान सेवाए रद्द कर दी गई और मुझे विवश होकर होटल के कमरे में बन्द रहना पड़ा। उसी समय होटल में भयंकर आग लगी। आग की इस विकरालता में एक चीनी कन्या जीवन और मौत के बीच एक घंटे तक भूलती रही और आखिर में दमकल वालों ने उसे बचा लिया।

१९-११-७७ को ४८ घंटे बाद जब मनीला में जन जीवन व विमान सेवा शुरू हुई तो मैं सीधा दिल्ली पहुचा और वहा से जोधपुर अपने पूज्य माताजी के अवशेषो के दर्शन हेतु गया। मेरे पूज्य पिताजी ने बहुत हिम्मत व धैर्य का परिचय दिया। धार्मिक प्रवृत्ति एव सस्कार ही ऐसे क्षणो मे पथ प्रदर्शन करते हैं। उन्होंने मुझे पूरी विगत बताई और कहा कि खुद उनके पास होकर भी आखिरी समय पर पास नही रह सके। उनकी आत्मा को एक ऐसा जोग मिलना था जिसमे वह सासारिक आचरण से दूर रह कर आत्मज्ञान व दर्शन की तरफ चली गई थी। और इसीलिए कुछ क्षणो के पहले मैं उनसे दूर होगया था। साधु सत व आचार्य श्री के दर्शन के बाद उन्होने देव गति प्राप्त की। अपने को बहुत समझाने की कोशिश की लेकिन जब भी मुझे इस घटना की याद आती है तो यह महसूस होता है कि मैं ही उनका एकमात्र अभागा पुत्र था, जो अपनी पूज्य माताजी की आखिरी यात्रा से वचित रहा। प्रकृति व हरि इच्छा प्रबल होती है। उनकी इच्छानुसार हम सब भाई बहुत आचार्य श्री के दर्शन करने १८ नवम्बर को लाडनू आये और उस पवित्र धरती को नतमस्तक किया, जहा उन्होने अपने शरीर का त्याग किया था।

धर्म के प्रति पूज्य माताजी की निष्ठा प्रबल थी। सासारिक कोई भी विषय उनको धर्म से पृथक नही कर सकता था और उसी के प्रभाव से उन्होंने अपने जीवन को सुगमता से त्याग कर देव गति प्राप्त की। उनका जीवन एक ज्वलन्त आदर्श है। अग्रेजी में एक कहावत है— Time & Tide waits for none समय व ज्वार किसी का इन्तजार नही करता है— और अपने साथ अपने लिए पुण्य कर्म व धर्म का फल ही शेष रह जाता है।

स्मृतियां जो भुलाई नहीं जा सकतीं :

[श्री सिद्धराज भंडारी]

० स्वर्ण जयन्ती की वे रातें

सितम्बर-अक्टूबर १९४६ की बात है। जोधपुर शहर की सर्वाधिक मान्य शिक्षण संस्था जो तत्कालीन जोधपुर राज्य में ओसवाल जाति के शिक्षण विकास का केन्द्र था, अपनी स्वर्ण जयन्ती मना रही थी। बड़े जोरों से तैयारी हो रही थी, चूंकि ओसवाल जाति के कई व्यक्ति जोधपुर राज्य मे उच्च पदों पर आसीन थे, इसलिए उन्हें इस ऐतिहासिक अवसर को गरिमापूर्ण मनाने में तत्कालीन जोधपुर नरेश की ओर से भी पूर्ण समर्थन व सौजन्य प्राप्त था।

मैं उन दिनों विद्यालय की नवमी कक्षा का विद्यार्थी था। बचपन से सांस्कृतिक गतिविधियों में रुचि थी। वाद-विवाद, कविता पाठ, नाटक आदि में भाग लेने के लिए शिक्षकों की प्रेरणा मिलती रही। विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती पर एक गौरवमय हिन्दी नाटक का मंचन होने जा रहा था, जिसका हिन्दी नाम था "वीर कुनाल"। ऐतिहासिक नाटक होने से उसकी भव्य सज्जा-धज्जा की तैयारी होने लगी। मेरा चुनाव उस नाटक की मुख्य भूमिका (नायिका) "कांचनमाला" के लिए हुआ। प्रायः एक मास से अधिक तक तो उसके लिए रोज प्रयोग विधि चलती रही। फिर नाटक का रंगमंच पर प्रायः एक मास तक मंचन होता रहा। सारे शहर में नाटक की धूम मची हुई थी।

मेरी उम्र कोई १३–१४ वर्ष की थी। प्रायः रात मे १२ बजे नाटक पूर्ण होने पर घर लौटना होता था और मुझे मेरे निकट के रिश्ते मे जीजाजी जो होते थे (श्री इन्द्रनाथजी मोदी) अपनी मोटर मे छोडते थे। मेरी माताजी को जहां अपने पुत्र की प्रशसा से गौरव होता था, वहा मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता भी लगी रहती थी। रजत पदको व अन्य पुरस्कारो से पुरस्कृत होकर रोज रात जब घर लौटता तो मोटर की आवाज के साथ दरवाजा खुला मिलता। उन ४०-५० दिनो मे शायद ही कभी आवाज देकर किवाड खुलवाने पडे हो। माताजी को पल भर के लिए आंख बन्द कर सोना भी मुश्किल हो जाता, जब तक मै सकुशल घर नही लौटता। समाज की अन्य महिलाएं जब मेरे नाटक की प्रशसा करती तब वे सिर्फ यही कहती कि "आप नजर उतार दें कहीं वह बीमार नही पड जाए, इसमे मेरा नाटक हो जायेगा। छोरा इतने दिनो से न तो खाने की ओर ध्यान देता है और न पीने का। नाटक–नाटक–नाटक — न जाने इस नाटक मे इसे कौनसा खिताब मिलने वाला है।

यह लिखना अतिशयोक्ति नही होगी कि उस नाटक को तत्कालीन जोधपुर महाराजा व राजकुमार देखने विशेष रूप से आमन्त्रित किये गये थे।

चाहे जितने रजत पदक व स्वर्ण पदक मिले हो, मा एक ही बात कहती थी कि इन सब को तेरी आने वाली बहू के लिए सम्भाल कर रख दें। यह था मा का वात्सल्य व स्नेह।

० प्रथम उपवास प्रथम पौषध

जब मैने कोई आठ दस वर्ष की कम आयु मे प्रथम बार 'सवत्सरी' के पर्व पर अष्ठ पौर का पौषध किया तो हिम्मत टूटने

लगी। पर श्रद्धेय माताजी ने अष्ठ पौर के पौषध के महत्व को समझा कर बड़ी हिम्मत से धर्म के प्रति मेरी भावना को जागृत किया। उनका वह उपदेश था जिसके कारण संवत्सरी के उपवास के क्रम की शुरुआत बनी। मुझे ठीक याद है कि मैंने माताजी को उस दिन जितना गौरवान्वित देखा, शायद मैंने ढेरों रजत व स्वर्ण पदकों तथा नाटक की सफलता पाकर भी नहीं देखा। जब धर्म संघ की महिलाओं ने उनको यह कहा कि, "तुम्हारे लड़के ने छोटी उम्र में अष्ठ पौर का पौषध करके कमाल कर दिया तो हँस कर यही कहा— सब गुरुदेव का प्रताप है।"

• मीठा उपालम्भ एवं धार्मिक दृढ़ता

बीच बीच मे सबत्सरी के दिन वे अनेक बार मुझसे कहती थी "कि तूने पहला आठ पौर का पौषध बहुत छोटी उम्र में किया था अब क्यों नहीं करता ? ऑफिस व काम काज की चिन्ता एक दिन के लिए तो छोड़ा करो। कुछ साथ नहीं आयेगा, सिर्फ धर्म भावना साथ आयेगी। सच बात तो यह है कि गत कई वर्षों मे मैंने आठ पौर का पौषध नहीं किया। एक बार मैं संवत्सरी के दिन ही विदेश यात्रा से कलकत्ता लौटा था मुझे ऐसा आभास था कि शायद संवत्सरी आज है तो मैंने प्लेन मे कुछ खाया नही था पर जैसे ही हवाई अड्डे पर अन्य भाइयो को धोती कुरते मे देखा तो पल भर के लिए अवाक रह गया और मेरी चिन्ता व विस्मयता और बढ़ गई जब मैंने पिताजी और माताजी को नही देखा और हठात पूछ बैठा सब ठीक तो है न ? तब भाइयो ने कहा, आज संवत्सरी है। पूज्य पिताजी-माताजी तो धर्म स्थान में आठ पौर के पौषध में हैं। चाहे मैं विदेश से कई दिनों बाद लौट कर आया पर संवत्सरी के दिन आठ पौर के पौषध के नियम को वे कभी नहीं छोड़ते थे।

० जो गिरता है वही उठता है

ग्यारवी कक्षा में कुछ अनायास कारणो से कॉलेज में मुझे परीक्षा मे रोक दिया गया। उन्ही दिनो कालेज मे नयी पद्धति शुरू हुई थी और उनके अनुसार विद्यार्थी की त्रैमासिक व अर्द्ध मासिक परीक्षा के अङ्कों को भी सालाना परीक्षा मे जोडना अनिवार्य कर दिया गया था। मैं अपनी कक्षा मे अच्छे विद्यार्थियो की श्रेणी मे था। यद्यपि दसवी के एक साल पहले कामर्स पढ कर फिर साइन्स (विज्ञान) को अपना ऐच्छिक विषय बना लिया क्योकि मैं डाक्टर बनने को सोच रहा था। विद्यालय मे स्वर्ण जयन्ती पर अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमो मे अग्रणी रहने के कारण आचार्य महोदय ने विशेष रूप से मुझे ऐच्छिक विषय दसवीं में बदलने की स्वीकृति प्रदान की थी।

जब ग्यारहवीं का वार्षिक परीक्षा फल निकला तो मेरा नाम सफल विद्यार्थियो की सूची मे से ऐसा गायब जैसे गधे के सिर से सींग, तब कुछ देर के लिए मैं अवाक रह गया। फिर सहपाठी भाईयो ने कहा "शायद तुम कक्षा में पोजीशन पाने वालों मे होओगे। अस्तु प्रथम द्वितीय व तृतीय का नाम रोक लिया गया है"। छान बीन व पूछ-ताछ करने पर पता चला कि मुझे फेल कर दिया गया है। मैं इससे इतना उदास हो गया कि घर तक का रास्ता नापना मुश्किल हो चला। घर गया तब माताजी ने मेरे चेहरे के रंग को देखकर सब कुछ समझ लिया। उन्होने कहा— जो गिरता है वही उठता है।

○ भारतीय दर्शन एवं जैन धर्म

मंगल

धम्मो मंगल मुक्किट्ठ अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो ॥

धर्म उत्कृष्ट मंगल है। धर्म का स्वरूप अहिंसा, संयम और तपस्या है। जिसका मन निरन्तर धर्म मे लगा रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

भारतीय धर्म और उनकी तुलना

भारतीय धर्मों मे 'जैन, 'बौद्ध' और 'वैदिक' ये तीन प्रमुख धर्म है। इन तीनो का चरम लक्ष्य है :-निर्वाण प्राप्ति ।

प्रत्येक धर्म के दो पहलू होते हैं—विचार और आचार। धर्म का आधार क्या है ? इसे समझने के लिए विचार की आवश्यकता होती है, उसे 'दर्शन कहा जाता है। धर्म को जीवन मे उतारना, वह आचार है।

जैन-धर्म का दार्शनिक रूप 'स्याद्वाद' है। सत्यांश को पूर्ण सत्य न समझना, एकांश मे पूर्णता का आग्रह न करना, अपेक्षा दृष्टि से विरोधी प्रतीत होने वाले वस्तु-धर्मों का विरोध मिटाना, यह स्याद्वाद का प्रयोजन है।

बौद्ध-धर्म का दार्शनिक सिद्धान्त 'क्षणिक-वाद' है— प्रत्येक पदार्थ पहले क्षण में उत्पन्न और दूसरे क्षण में नष्ट होता है, कोई भी पदार्थ नित्य नहीं।

वैदिक धर्म की नैयायिक, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तर मीमांसा, सांख्य और योग ये छः विचार-धाराएँ हैं।

जैनों के श्वेताम्बर और दिगम्बर, बौद्धों के हीनयान और महायान इस प्रकार भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं। फिर भी जिस प्रकार जैनों की सब शाखाओं को स्याद्वाद और बौद्धों के सम्प्रदाय को शून्यवाद या क्षणिकवाद मान्य है, वैसे वैदिकों का कोई एक ऐसा सिद्धान्त नहीं

है, जिसे सर्वमान्य कहा जा सके। आधार प्रायः इन सभी धर्मों में न्यूनाधिक रूप मे 'अहिंसा' है।

दर्शन के अधिष्ठाता

जैन-दर्शनके अन्तिम अधिष्ठाता—चरम तीर्थंकर भगवान महावीर थे। बौद्ध दर्शन के महात्मा बुद्ध और न्याय वैशेषिक, पूर्व-मीमांसा, उत्तरमीमांसा और योग इनके प्रणेता क्रमश. महर्षि गौतम, कणाद, जैमिनी, बादरायण, कपिल और पातञ्जलि थे।

मान्य ग्रन्थ

जैन 'द्वादशाङ्गी' को प्रमाण मानते है। बौद्धों के मान्य ग्रन्थ 'पिटक' हैं। वैदिकों के स्वत—प्रमाण वेद हैं।

यह सब भारतीय धर्मों का सक्षेप में परिचय है। अब इनमें विचार-भेद होते हुए भी जो समता है, उस पर विचार करना है।

जैन-दर्शन

आस्रव दुःख के हेतु है। मोक्ष-आत्मा के शुद्ध स्वरूप की अभि-व्यक्ति तथा दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। सम्वर और निर्जरा ये मोक्ष के मार्ग है।

बौद्ध दर्शन

दुःख (हेय), समुदय, (हेय—हेतु) मार्ग (हानोपाय) और निरोध (मोक्ष-हान) ये चार आर्य-सत्य माने जाते है।

स्मृति]

अविद्या[1] दुःख का कारण है। विद्या से मोक्ष--अमरत्व प्राप्त होता है।

कुछ तुलनात्मक सिद्धान्त वाक्य

अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो। (जैन)

प्राणीमात्र के प्रति जो संयम है, वह अहिंसा है।

अहिंसा सव्व पाणानं, अरियोत्ति पवुच्चई। (बौद्ध)

अहिंसा ही आर्य—सत्य है।

सर्वथा सर्वदा सर्वभूतेष्वनभिद्रोह '—अहिंसा (वैदिक)

सर्वथा सदा सब प्राणियों को कष्ट न पहुचाना, यही अहिंसा है।

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ (जैन)

१—अविद्या बन्ध हेतुः स्यात्, विद्या स्यात् मोक्ष कारणम्।
ममेति बध्यते जन्तुः न ममेति विमुच्यते ॥

विद्याञ्चा विद्याञ्च, यस्तद् वेदोभय सह।
अविद्या मृत्यु तीर्त्वा, विद्ययाऽमृतमश्नुते।

ईशोपनिषद् ११

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कर्म-जीविका वृत्ति के अनुसार होते हैं।

न जच्चा वसलो होती, न जच्चा होति ब्राह्मणो।

कम्मुणा वसलो होइ, कम्मुणा होइ ब्राह्मणो ॥ (बौद्ध)

जाति से कोई शूद्र या ब्राह्मण नहीं होता। कर्म से ही मनुष्य शूद्र होता है और कर्म से ही ब्राह्मण।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (वैदिक)

श्री कृष्ण कहते हैं—मैंने गुण और कर्म-विभाग के अनुसार चार वर्णों की सृष्टि की है।

सुचिण्ण कम्मा सुचिण्ण फला, दुचिण्णा कम्मा दुचिण्ण फला। (जैन)

अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का बुरा फल होता है।

यं कम्मं करिस्सामि, कल्याणं वा पापकं तस्स दायादं भविस्सामि।

(बौद्ध)

मैं अच्छा या बुरा जैसा कर्म करूंगा वैसा ही मुझे फल भुगतना होगा।

यादृशं क्रियते कर्म, तादृशं लभ्यते फलम्। (वैदिक)

जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है, वह वैसा ही फल पाता है।

जैन और वैदिक दर्शन में आत्मा है, कर्म है, पुनर्जन्म है, स्वर्ग नरक है, मोक्ष है, शुभ कर्मों का शुभ फल, अशुभ कर्मों का अशुभ फल होता है— आदि-आदि मूलभूत सिद्धान्तों की समता है।

बौद्ध दर्शन एक ध्रुव आत्मा को स्वीकार नही करता । इसके अतिरिक्त कर्म, पुनर्जन्म आदि सिद्धान्त उसे भी जैन और वैदिको की भांति पूर्णतया मान्य हैं।

जैन और बौद्ध जगत् को अनादि-अनन्त मानते हैं, ईश्वर को जगत् का कर्त्ता नहीं मानते ।

वैदिक जगत् को अनादि—अनन्त मानते हुए भी इसके साथ सृष्टि और प्रलय का सम्बद्ध जोडते हैं और उनका-सृष्टि और प्रलय का कर्त्ता ईश्वर माना जाता है ।

जैन ईश्वर को मानते हैं किन्तु उसे जगत् का निर्माता नहीं मानते। जैन दर्शन के अनुसार जो आत्मा कर्म-मल से सर्वथा मुक्त हो जाती है, वही ईश्वर है।

जैन और बौद्ध दोनो आत्मा का कर्तृव्य स्वीकार करते हैं। गीता मे भी यही सिद्धान्त माना गया है—

नादत्ते कस्यचित् पाप. न चैव सुकृतं विभु ।
अज्ञानेनावृत ज्ञान, तेन मुह्यन्ति जन्तव ॥[1]

विभु अर्थात् सर्वव्यापी आत्मा या परमेश्वर किसी का पाप और किसी का पुण्य भी नही लेता । ज्ञान पर अज्ञान का पर्दा पडा रहने के कारण (अर्थात माया से) प्राणी मोहित हो जाते हैं ।

न कर्तृत्व न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभु ।
न कर्मफल सयोग, स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥[2]

प्रभु अर्थात् परमेश्वर लोगों के कर्तृत्व को, उनके कर्म को (या

१—गीता अध्याय ५ श्लोक १५   २—गीता अध्याय ४ श्लोक १४

उनके प्राप्त होने वाले) कर्म फल के संयोग को भी निर्माण नहीं करता। स्वभाव अर्थात् प्रकृति ही (सब कुछ) किया करती है।

शरीरं यदवाप्नोति, यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानी संयाति, वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥

ईश्वर अर्थात् जीव जब (स्थूल) शरीर पाता है और जब वह (स्थूल) शरीर से निकल जाता है, तब यह जीव इन्हें (मन और पांच इन्द्रियों को) वैसे ही साथ ले जाता है जैसे कि (पुष्प आदि) आश्रय से गन्ध को वायु ले जाती है।

'पुण्य पुण्येन कर्मणा पाप पापेन कर्मणा ।
पुण्य कर्म से पुण्य और पाप कर्म से पाप होता है।

धर्मों का मूल अहिंसा और सत्य से ओत-प्रोत है। धार्मिक व्यक्ति सभी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन कर, सार-सार ग्रहण करें तो बहुत लम्बे काल से चलने वाला धर्म-युद्ध समाप्त हो सकता है।

जैन-धर्म

राग, द्वेष विजेता को जिन कहते हैं। "जिन" के द्वारा जो धर्म प्रवर्तित होता है, उसका नाम जैन धर्म है। इस अवसर्पिणी काल मे जैन-धर्म के चौबीस प्रवर्तक हुए है। उनमे पहले प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव थे और चौबीसवें श्रमण भगवान् महावीर।

इन सभी तीर्थङ्करो ने अहिसा धर्म का प्रचार किया। उन्होंने बताया कि प्राणीमात्र सुख का इच्छुक है। दुःख कोई नही चाहता इसलिए किसी को मत सताओ। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता इसलिये किसी को मत मारो। सर्व प्राणी-भूत, जीव और सत्व उनका घात मत करो। बलात्कार से किसी को अपने अधीन मत करो, प्रहार मत करो, शारीरिक, मानसिक पीडा मत उपजाओ, सन्ताप मत करो, उपद्रव मत करो। यह धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। इस जिनवाणी मे धर्म का शुद्ध स्वरूप वर्णित है। सत्य आदि चार और महाव्रत हैं। वे अहिसा की ही रक्षा करते हैं। अहिसा जैन-धर्म का मूल है। इसलिए जैन-धर्म के सिद्धान्त कलह-उत्पीडित जगत् के लिए पूर्ण हितकर हैं। जैन धर्म का दृष्टिकोण बहुत उदार है। अपेक्षावाद के द्वारा जैन-धर्म सरल और विवाद रहित बना हुआ है। जैन-धर्म उद्योग, भाग्य, नियति, स्वभाव, काल आदि बातो का समन्वय करता है। आचार और विचार दोनों को प्रधान मानता है इसलिए यह परिपूर्ण है।

नमस्कार महामन्त्र

णमो अरिहन्ताणं,
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं ।

अर्थ—मैं अरिहन्त भगवान् को नमस्कार करता हूं। मैं सिद्ध भगवान् को नमस्कार करता हूं। मैं धर्माचार्य को नमस्कार करता हूं। मैं उपाध्याय को नमस्कार करता हूं। मैं लोक के सब साधुओं को नमस्कार करता हूं।

मंगल-पाठ

चत्तारि मंगलं अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं।
साहू मंगलं केवलि पन्नत्तो धम्मो मंगलं ।
चत्तारि लोगुत्तमा अरिहन्ता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा केवलि पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥
चत्तारि सरणं पवज्जामि अरिहन्ते सरणं पवज्जामि
सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि
केवलि पन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि

मंगल चार हैं—अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवलि भाषित धर्म। ये चार ही लोक में उत्तम हैं। मैं इन चारों की शरण लेता हूं।

नवतत्व

तत्व का अर्थ है रहस्य भूत वस्तु अथवा वस्तु का स्वरूप। वे नव हैं —जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

जीव—"उपयोगलक्षणो जीव."—जिसमें उपयोग है, जो जानता है, वह जीव है।

अजीव—"अनुपयोग लक्षणोऽजीव"—जिसमें उपयोग नहीं होता, जानने की शक्ति नहीं होती वह अजीव है।

पुण्य—"शुभकर्म पुण्यम्"—उदय में आये हुए शुभकर्म-पुद्गल पुण्य कहलाते हैं।

पाप—"अशुभकर्म पापम्"—उदय में आये हुए अशुभकर्म-पुद्गल पाप कहलाते हैं।

आस्रव—"कर्माकर्षणआत्म-परिणाम आस्रव"—कर्म ग्रहण करने वाले जीव के परिणाम आस्रव कहलाते हैं।

संवर—"आस्रवनिरोध संवर"—कर्म रोकने वाले जीव के परिणाम संवर है।

निर्जरा—"तपसाकर्मविच्छेदात्मनैर्मल्य निर्जरा"—तपस्या के द्वारा कर्मनाश होने से जो आत्म-उज्ज्वलता होती है, उसे निर्जरा कहते हैं।

बन्ध—"कर्मपुद्गलादान बन्ध"—आत्मा के साथ कर्म पुद्गलों का आदान-ग्रहण अर्थात् सम्बन्ध हो उसे बन्ध-कहते हैं।

मोक्ष—"कृत्स्नकर्मक्षयादात्मन स्वरूपावस्थान मोक्ष"—सब कर्मों के क्षय होने से आत्मा का अपने स्वरूप में स्थित होना मोक्ष है।

कर्म

आत्मनः सद्सत् प्रवृत्त्याकृष्टास्तत् प्रायोग्य पुद्गला कर्म।

क्वचित् सद्सत् क्रियापि।

तच्चात्म गुणावरोध सुख दुःख हेतु।

आत्मा की अच्छी-बुरी प्रवृत्ति से खिंचे हुए पुद्गलों का नाम कर्म है। कर्म रूप से परिणत होने योग्य कहीं-कहीं अच्छी व बुरी क्रिया को भी कर्म कहते हैं। यह आत्म गुणों को रोकने का एवं सुख दुःख का हेतु है। वह आठ प्रकार का है—

(१) ज्ञानावरणीय- ज्ञान को रोकने वाले पुद्गल।
(२) दर्शनावरणीय— दर्शन को रोकनेवाले पुद्गल।
(३) वेदनीय— आत्मिक सुख को रोकने वाले अथवा सुख दुःख देने वाले पुद्गल।
(४) मोहनीय- सम्यक् श्रद्धा और सम्यक् चारित्र को रोकने वाले और बुरे आचार-विचारों में ले जाने वाले पुद्गल।
(५) आयुष्य- अटल स्थिरता को रोकने वाले अथवा जीवित रहने में सहायता करने वाले पुद्गल।
(६) नाम- अमूर्तपन को रोकने वाले अथवा शुभ-अशुभ शरीर आदि को प्राप्त कराने वाले पुद्गल।
(७) गोत्र- ऊँच-नीच पन से रहित समान स्थिति को रोकने वाले और अमुक छोटा है और अमुक बड़ा है ऐसी स्थिति को प्राप्त कराने वाले पुद्गल।
(८) अन्तराय- लब्धि-प्राप्ति को रोकने वाले पुद्गल।

भिक्षु स्वामी

तेरापंथ के प्रवर्तक श्रीमद् भिक्षु स्वामी का जन्म वि० संवत् १७८३ आषाढ़ शुक्ला १३ को कंटालिया (मारवाड) में हुआ था। आपके पिता का नाम बल्लूजी था तथा माता का नाम दीपांजी था। आप ओसवाल वंश (सकलेचा) मे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। आपकी पत्नी का विरक्तावस्था मे देहान्त हो गया था। उसके बाद आपने एकाकी दीक्षा लेने की ठानी परन्तु आपकी माता ने दीक्षा देने मे इनकार कर दिया। तत्कालीन स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य रघुनाथजी के बहुत कहने सुनने पर माता ने उत्तर दिया कि महाराज ! मैं इसे दीक्षा की अनुमति नही दे सकती क्योंकि जब यह गर्भ में था, तब मैंने सिंह का स्वप्न देखा, इसलिए यह सिंह जैसा पराक्रमी होगा। रघुनाथजी ने उत्तर देते हुए कहा—बाई ! यह तो बहुत अच्छी बात है, तेरा बेटा साधु बनकर सिंह की तरह गूंजेगा। इस पर माता ने राजी होकर दीक्षित होने की आज्ञा दे दी। आपने वि० सं० १८०८ मे मार्ग शीर्ष कृष्णा १२ को बगडी (मारवाड) में उनके पास दीक्षा ग्रहण की।

आपकी दृष्टि पैनी थी। तत्व की गहराई में पैठना आपके लिए स्वाभाविक सी बात थी। आप थोड़े ही वर्षों में जैन शास्त्रों के पारंगत पंडित बन गये। वि० सं० १८१५ के आस-पास आपके दिमाग में साधु वर्ग की आचार-विचार सम्बन्धी शिथिलता के प्रति

एक क्रान्ति की भावना पैदा हुई। आपने अपने क्रान्ति-पूर्ण विचारों को आचार्य रघुनाथजी के सामने रखा। दो वर्ष तक विचार-विमर्श होता रहा। आखिर कोई सन्तोषजनक निर्णय नहीं हुआ तब आप वि० स० १८१७ चैत्र शुक्ला ९ को उनसे पृथक् हो गये।

वि० स० १८१७ आषाढ़ शुक्ला १५ के दिन केलवा (मेवाड़) में आपने जैन-शास्त्र-सम्मत दीक्षा ग्रहण की। उस समय आपके आदेशों में १२ साधु थे। कई आपकी सेवामें और कई दूसरी जगह उपस्थित थे। उसी दिन से स्वामीजी की अध्यक्षता में एक सुसज्जित साधु-संस्था का सूत्रपात हुआ और आगे जाकर थोड़े ही समय के बाद वह तेरापंथ के नाम से प्रख्यात हुई। वि०स० १८१७से१८३१ तक का आपका जीवन महान् संघर्षमय रहा। वह १५ वर्ष का समय तपस्या, कठोर साधना एवं संस्था की भावी रूपरेखा की आलोचना और शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करने में बीता।

उसके बाद १८३२ में जब यह निश्चित हो चुका कि संस्था का कार्यक्रम विन्यस्त एवं सुन्दर ढंग से चलेगा, तब आपने अपने प्रमुख शिष्य भारमलजी को युवाचार्य-पद दिया और उसके साथ-साथ मर्यादा का सूत्रपात किया। पहले-पहल ग्यारह मर्यादा वाला लेख मार्गशीर्ष कृष्णा ७ को लिखा गया था। उसके बाद समय-समय पर आप नये-नये नियमों से संघ को दृढ़ करते रहे। आपने शासनकाल

में ४९ साधु और ५६ साध्वियां दीक्षित हुई। उनमें आचार्य भारमलजी, हरनाथजी, टोकरजी, खेतसीजी, वेणीरामजी व हेमराजजी आदि साधु उल्लेखनीय है।

वि० स० १८६० सिरियारी (मारवाड) में आपका भाद्र शुक्ला १३ के दिन सात पहर के अनशन के उपरान्त समाधिपूर्ण स्वर्गवास हुआ। उस समय आपकी आयु ७७ वर्ष की थी।

तेरापन्थ

आचार्य भिक्षु ने स्थानकवासी सम्प्रदाय से पृथक हो कर जैन के मूल तत्त्वों का प्रचार शुरु किया। आपका विचार सिर्फ विशुद्ध प्रचार और साधु संस्था को संगठित करने का था। इसलिए आपने अपनी साधु संस्था का कोई नाम न रखा। जोधपुर की घटना है कि यहाँ एक दूकान में तेरह श्रावक पोषध कर रहे थे। उस समय स्थानीय दीवान फतहसिंहजी सिंघी उधर से आ निकले। उन्होंने श्रावकों से पूछा —आप यहा पोषध क्यों कर रहे हैं? इसके उत्तर में श्रावकों ने बताया कि हमारे गुरु ने स्थानक का परित्याग कर दिया है इसलिए हमने यहाँ पोषध किया है। दीवानजी के आग्रह पर उन्होंने सारा विवरण सुनाया। उस समय वहाँ एक सेवक जाति का कवि पास ही खड़ा था। उसने तेरह की संख्या को ध्यान में लाकर तत्काल एक दोहा बना डाला —

आप आप रो गिलो करे, आप आप रो मन्त ।
सुणज्यो रे शहर रा लोकां, ए तेरापन्थी तंत ॥

आचार्य भिक्षु मेवाड़ में विराज रहे थे। उन्हें इसका पता चला। तब उसी समय आसन छोड़ कर, हाथ जोड़ कर आपने प्रभु को सम्बोधन करते हुए कहा —"हे प्रभो ! यह तेरा पन्थ है।"

तेरापन्थ के तेरह नियम

तेरापन्थ के प्रमुख तेरह नियम है, जैसे पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति।

पाच महाव्रतो का पहले वर्णन किया जा चुका है। पाच समिति–

१ ईर्या—देखकर चलना।

२ भाषा–विचारपूर्वक निरवद्य बोलना।

३ एषणा–शुद्ध आहार-पानी की गवेषणा करना।

४ आदान निक्षेप–वस्त्र आदि को सावधानी से लेना और रखना

५ परिष्ठापन– उचित भूमि मे मल-मूत्र का उत्सर्ग करना।

तीन-गुप्ति--

१ मनो-गुप्ति– मन को वश मे करना।

२ वाक्-गुप्ति– वचन को वश मे करना।

३ काय गुप्ति- शरीर का सयम करना।

साधुओ के लिए ये तेरह नियम पूर्णरूप से पालनीय हैं और श्रावको को इनका शक्ति-अनुसार पालन करना चाहिये। 'तेरापन्थ' का स्वामीजी ने दूसरा अर्थ यह किया है कि जो इन तेरह नियमों को पालता है या इनमे विश्वास रखता है, वह तेरापन्थी है।

○ कर्मयोगी महावीर

[मुनि श्री नथमल]

जयंचरे, जयंचिठ्ठे, जयमासे, जयंसए ।
जयं भुंजुंतो, भांसतो, पाव कम्म नवधई ॥

"—तुम चलो पर संयम पूर्वक, ठहरो पर संयम से, बैठो पर संयम के साथ, सोओ पर संयम पूर्वक, खाओ पर संयम से, बोलो पर संयम पूर्वक, तुम्हारे पाप कर्म का बंध नहीं होगा।"

—भगवान महावीर

भगवान् महावीर विक्रम पूर्व छठी शताब्दी मे जन्मे। विदेह देश की राजधानी वैशाली (वसाढ), जिला मुजफ्फरपुर उनकी जन्म-भूमि थी। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ तथा माता का नाम त्रिसला था। वे जाति के क्षत्रिय थे। वे राजकीय वैभव मे पले-पुसे। कौमार बीता। युवा बने। विवाह किया। एक पुत्री हुई। महावीर के माता-पिता भगवान् पार्श्व की श्रमण-परम्परा के अनुयायी थे। उनके देहावसान के बाद उन्होंने तत्काल श्रमण बनना चाहा। उनके बड़े भाई नन्दीवर्धन के आग्रह से वैसा नही हो सका। वे दो वर्ष घर में रहे। तीस वर्ष की अवस्था मे श्रमणत्व की साधना को निकल गए। शान्ति उनके जीवन का साध्य था। क्रान्ति था उसका सहचर परिणाम। उन्होंने बारह वर्ष तक शांत, मौन और दीर्घतपस्वी जीवन बिताया। विशुद्ध साधना और शुक्ल-ध्यान की श्रेणी से कैवल्य प्राप्त किया। साधक महावीर अब केवली बन गए। वीतराग हुए, इसलिए जिन कहलाए। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—इस तीर्थ-चतुष्टय की स्थापना की, इसलिए तीर्थङ्कर कहलाये। तत्त्वद्रष्टा महावीर ने कैवल्य के द्वारा विश्व को देखा, जाना और कहा। उनकी धर्म-देशना का सर्वोपरि तत्त्व था—अहिंसा। अहिंसा अर्थात् समता। उन्होंने

कहा—समता ही विज्ञान है। नैसर्गिक विषमता त्रैकालिक है। एक चींटी, एक गधा, और एक मनुष्य, यह अपनी-अपनी योग्यता का परिणाम है। इसकी चिकित्सा मनुष्य के हाथ मे नहीं है। वह सामाजिक विषमता का अन्त ला सकता है। वह उसकी मानसिक सृष्टि है। समाज के सब प्राणी एक रूप, एक जितने लम्बे-चौड़े, समबुद्धिवाले हों, इसका नाम समता नहीं है। समता का अर्थ है—मध्यस्थवृत्ति, लाभ मे मद न करना और अलाभ में दीन न होना। दैहिक और बौद्धिक वैषम्य, जो जन्मजात होता है, वह कोई बुराई नहीं है। बुराई वह वैषम्य है जो सत्ता, शक्ति और बुद्धि के आधार पर असत्ताक, अशक्तिक और अबुद्धिक व्यक्तियों के साथ बरता जाता है। इसलिए ध्रुव—सत्य धर्म की देशना देते हुए भगवान् महावीर ने कहा—'किसी को मत मारो, मत सताओ, पीड़ा मत दो, दास-दासी बना हुकूमत मत करो, बलात् किसी को अपने अधीन मत करो। जो अपनी वेदना को समझता है, वही दूसरो की वेदना को समझता है। जो दूसरों की वेदना को समझता है, वही अपनी वेदना को समझता है। जो व्यक्ति धर्म, अर्थ और काम के लिए, जन्म—मृत्यु से मुक्त होने के लिए, मान-प्रतिष्ठा और बड़प्पन के लिए दूसरे जीवों को मारते हैं, यह उनके हित के लिए नहीं होता। हिंसा कायरता है। जो सत्वहीन होता है, वही दूसरों को मारता है। अहिंसा वीर-धर्म है। जो वीर होते हैं, वे अहिंसा के राजपथ पर चल पड़ते हैं। धर्म का एक पक्ष है अहिंसा और दूसरा कष्ट-सहिष्णुता। जो कष्ट—

सहिष्णु नहीं होता, वह अहिंसक भी नहीं होता। अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने अभय पर बल दिया। जो दूसरो से न डरे और न डराए, वही अहिंसक होता है। संयमी पुरुष दूसरो की हिंसा कर दूसरो को कष्ट पहुचा कर जीवित रहना नही चाहते।'

भगवान् महावीर ने जीवनव्यापी अहिंसा का स्रोत बहाया, वह जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्ति तक जा पहुचा। जातिवाद, भाषावाद और श्रेष्ठतावाद आदि जो हिंसा के अंग थे, उसके विरुद्ध अपने आप क्रान्ति-शस्त्र बन उठा।

प्रवाह का अनुगमन करते हुए लिखा जाता है—भगवान् महावीर ने जातिवाद के विरुद्ध क्रान्ति की, यज्ञ-बलि का घोर विरोध किया, क्रियाकाण्डों की निरर्थकता बतलाई आदि-आदि। किन्तु यह सब उनके विराट् साध्य को सीमित करने जैसा है। उनका साध्य था मुक्ति। वे जातिवाद आदि का विरोध करने नही चले। वे चले थे मुक्ति के लिए अहिंसा की साधना करने। अहिंसा का तेज जो निखरा वह हिंसा की बुराइयों को प्रकाश मे लाता चला गया। अहिंसा का विश्लेषण करते हुए भगवान् ने कहा—यह संसरणशील प्राणी अनेक बार महान् बन चुका है और अनेक बार साधारण। कौन छोटा है और कौन बड़ा? सब छोटे हैं और सब बड़े। जातिवाद के आधार पर ऊंच-नीच की कल्पना मिथ्या है। जो शील-सम्पन्न है, वही जातिमान् है। श्रेष्ठ वही है, जो तपस्वी है। हरिकेशबल जैसे चाण्डाल और आर्द्रकुमार जैसे अनार्य उनके संघ मे प्रव्रजित हुए।

उस समय का पंडित-वर्ग भाषा के गर्व में चूर था। भाषा का मद भी हिंसा है। 'साधनाहीन व्यक्ति को भाषा त्राण नहीं देती'—इस वाक्य ने भाषावाद को चुनौती दे डाली और भगवान् ने जनता की भाषा में जनता को समझाया। याज्ञिक हिंसा, जो स्पष्ट हिंसा थी, उसका अहिंसा से मेल न बैठना स्वाभाविक ही था। अहिंसा की परिधि को व्यापक करते हुए उन्होंने कहा—"जीव-घात और मनोमालिन्य जैसे हिंसा है, वैसे एकान्त-दृष्टि या मिथ्या-आग्रह भी हिंसा है।" दृष्टि को ऋजु और सापेक्ष किए बिना वस्तु-स्थिति का यथार्थ ग्रहण और निरूपण नहीं किया जा सकता। वे न कोरे ज्ञानवादी थे और न क्रियावादी। वे जितने व्यवहारवादी (तर्कवादी) थे, उतने ही निश्चयवादी (श्रद्धावादी)। बन्धन-मुक्ति के उन्होंने तीन मार्ग बतलाए—सम्यक्-श्रद्धा सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र। वस्तुतत्त्व के अन्तस्तल तक पहुँचने के लिए उन्होंने निश्चय-दृष्टि दी और उनके स्थूल निरीक्षण के लिए व्यवहार-दृष्टि। वे जीवन-व्यवहार में सत्य के आग्रही थे। उन्हें शिष्य प्रिय नहीं थे उनको साधना प्रिय थी। महावीर के साधना-क्षेत्र में वही प्रिय है जो दीर्घ-तपस्वी होता है। आंतरिक वृत्तियों का शोधन और बाहरी वृत्तियों पर विजय—यह थी उनके तपस्वी-जीवन की परिभाषा। उनका तपस्वी शरीर हमारे सामने नहीं है। उनकी तपस्वी-साधना की प्रतीक वाणी हमें प्राप्त है। हमारा धर्म है, हम उस अमरत्व का साधन बना आगे बढ़ें।

卐

केवल वही आदमी—

× केवल वही आदमी दूसरो को पार लगा सकता है, जो स्वय पार लग चुका है।

× केवल वही आदमी दूसरो को जिला सकता है, जो स्वय जी चुका है।

× केवल वही आदमी दूसरो मे आग पैदा कर सकता है, जो स्वयं आग से जलता रहता है।

× केवल वही आदमी दूसरो को जगा सकता है, जो स्वय जागा हुआ है।

× केवल वही आदमी दूसरो को उठा सकता है, जो स्वयं उठा हुआ है।

× केवल वही आदमी दूसरो को दिखा सकता है, जो स्वय देख चुका है।

अप्पा हु खलु सययं रक्खियव्वो, सव्विन्दिएहिं सुसमहिएहिं ।
अरक्खिओ जाइ पहं उवेइ, सुरक्खियो सव्व दुहाण मुच्चइ ।

सतत करो आत्मा की रक्षा, बना इन्द्रियों को स्थिर युक्त ।
दुख पाता है वही अरक्षित, रक्षित होता दुख उन्मुक्त ॥

卐

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थए ॥

आत्मा ही दमनीय वस्तु है, आत्मा ही दुर्दम है घोर ।
दमितात्मा ही सुख पाता है, इस जीवन में पर जीवन में ॥

卐

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य ।
माहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहिं य ॥

अच्छा हो अपने नियमों से, हम अपना संकोच करें ।
नहीं दूसरे वध बन्धन से, मानवता की शान हरें ॥

卐

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥

जो दस लाख सुभटों को भी, दुर्जय रण में लेता जीत ।
एक जीत लेता अपने को, यह विजय ही परम विजय है ॥

पंचिन्दियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेवमप्पाणं, सव्वं अप्पे जिए जिअं ॥

पांच इन्द्रियां क्रोध, मान, फिर माया और लोभ दुर्जेय ।
दुर्जय आत्मा, इनको जीते, वह लेता है सबको जीत ॥

卐

एगे जिए जिआ पंच, पंच जिए जिआ दस ।
दस हा उ जिणित्ताणं, सव्व सत्तू जिणामहं ॥

एक चित्त को वश करता हूँ वश हो जाते चार कषाय ।
पांच इन्द्रियों पर ला अंकुश, रिपु-गण को लेता हूँ जीत ॥

卐

लाभा लाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो निंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥

लाभ और अलाभ भाव सम, सुख दुख जीवन मौत समान ।
निंदा और प्रशंसा भी सम, सम वल मान और अपमान ॥

卐

अप्प सत्थेहि दारेहिं, सव्वओ पिहियासवे ।
अज्झप्पज्झाण जोगेहिं, पसत्थ दम सासणे ॥

अप्रशस्त वृत्तियों से जो, पिहिताश्रव होता है पूर्ण ।
अध्यात्म-ध्यान से, आत्म-योग से, वह प्रशस्त शासन वाला है ॥

कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

नहीं जन्मना किन्तु कर्मणा, होता ब्राह्मण होता क्षत्र ।
वैश्य कर्मणा ही होता है, और कर्मणा होता शूद्र ॥

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो ॥

धर्म परम मंगल संयम तप और अहिंसा उसके रूप ।
उसे देव भी वन्दन करते, जिसका मन उसमें रमता है ॥

जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥

कमल सलिल में पैदा होता, किन्तु न होता उसमें लिप्त ।
त्यों न लिप्त बनता कामो में, वही कर्मणा ब्राह्मण होता ॥

अविरइं पडुच्च बाले आहिज्जइ,
विरइं पडुच्च पंडिए आहिज्जइ,
विरयाविरइं पडुच्च बालपंडिए आहिज्जइ ।

सर्व विरति सहित कहलाता, देश विरति जो पहिला यान ।
नहीं विरति पूर्ण भी रहता, यह कहलाता है शेष यान ॥

इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे नावरज्झई।
पूई देह निरोहेण, भवेदेवित्ति मे सुयं॥

दूर कामनाओ से रहता, वह लेता अपना हित साध।
अशुचि देह से छुटकारा पा, दिव्य देव गति वह पाता है॥

卐

इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झई।
सोच्चा नेयाउयं-मग्गं, ज भुज्जो परिभस्सई॥

घिरा कामनाओ मे रहता, वह करता अपना अपराध।
न्याय मार्ग को सुनकर भी तो, उत्पथ पर वह जन चलते है॥

卐

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मितममित्त च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ॥

सुख दुख करनेवाली आत्मा, आत्मा करती उनका नाश॥
है सुहृद आत्मा सुग्रन्थित, दुराचाररत वह रिपु बनती॥

卐

न तं अरी कंठ छेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पया।
से नाहिइ मच्चु मुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणो॥

कंठ-छेद करने वाला रिपु, नहीं करता जो घोर अनर्थ।
वह अनर्थ भी कर लेती है, दुराचार-रत अपनी आत्मा॥

जो समो सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु च ।
तस्स सामाइय होइ, इइ केवलिभासियं ॥

चर अचर सब जीवों के प्रति, सम होना जिसका आचार ।
साम्य योग का अधिकारी वह, जिन वाणी का है यह सार ॥

卐

निम्ममो निरंहकारो, निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥

निर्मम और निरभिमान जो, होता निर्गौरव निर्लेप ।
वही साम्य-योगी बन पाता, जिन-वाणी का यह संक्षेप ॥

卐

अणुबद्ध रोग पसरो, तह य निमित्तम्मिहोइ पडिसेवी ।
एएहि कारणेहि, आसुरिय भावण कुणइ ॥

क्रोध अशान्ति होना पल पल, लाभ-हानि सुख-दुख संचार ।
जो कहता वह मर्म इसका, भाव आसुरी कहलाता है ॥

卐

एव खु नाणिणो सार, ज न हिंसइ किंचण ।
अहिंसा समय चेव, एतावन्त वियाणिया ॥

सार यही ज्ञानी बनने का, नहीं किसी का कुछ प्राण ।
साम्य योग ही मूल अहिंसा, और यही करना विज्ञान ॥

वहिया उड्ढमादाय, नावकंखे कयाइ वि।
पुव्वकम्मक्खयट्ठाए, इमं देह समुद्धरे ॥

लक्ष्य तुम्हारा अति ऊंचा है, मत बनना पुद्गल-आसक्त।
संचित कर्म खपाना ही हो, इस शरीर धारण का अर्थ ॥

卐

अणुसोअ पट्ठिए बहु जणम्मि, पडिसोअ लद्ध लक्खेणं।
पडिसोअमेव अप्पा, दायव्वो होउ कामेणं ॥

अनुस्रोत गामी बहुजन है, प्रतिस्रोत है जिसका लक्ष्य।
उसे उसी पथ मे चलना है, वह अगर कुछ बनना चाहे ॥

卐

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ॥

श्रद्धाहीन ज्ञान नहीं पाता, ज्ञान विना कैसा चारित्र।
हीनचारित्र मुक्त नहीं होता, नहीं अमुक्त पाता निर्वाण ॥

卐

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
माहं परेहि दम्मंतो, बंधणेहि वहेहि य ॥

अच्छा हो अपने नियमों से, हम अपना संकोच करें।
नहीं दूसरे कर बन्धन से, मानवता को म्लान हरें ॥

जो सहस्स सहस्साणं, सगामे दुज्जए जिणे ।
एग जिणेज्ज अप्पाण, एस से परमो जओ ॥

जो दस लाख शत्रुओ को भी, दुर्जय रण मे लेता जीत ।
एक जीत लेता अपने को, वह विजय ही परम विजय है ॥

卐

अणुसोअ पट्ठिए बहु जणम्मि, पडिसोअ लद्ध लक्खेणं ।
पडिसोअमेव अप्पा, दायव्वो होउ कामेणं ॥

अनुस्रोत गामी बहुजन है, प्रतिस्रोत है जिसका लक्ष्य ।
उसे उसी पथ में चलना है, वह अगर मुक्त बनना चाहे ॥

卐

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥

दर्शन बिन ज्ञान नहीं पाता, ज्ञान बिना कैसा चारित्र ।
हीनचरित्र मुक्त नहीं होता, नहीं अमुक्त पाता निर्वाण ॥

महावीर ने कहा :

- शास्त्र ज्ञान नहीं है, क्योंकि शास्त्र कुछ जानता नहीं है; इसलिए ज्ञान अन्य है और शास्त्र अन्य ।
- शब्द ज्ञान नहीं है, क्योंकि शब्द कुछ जानता नहीं है; इसलिए ज्ञान अन्य है और शब्द अन्य ।
- रूप ज्ञान नहीं है, क्योंकि रूप कुछ जानता नहीं है; इसलिए ज्ञान अन्य है और रूप अन्य ।
- वर्ण ज्ञान नहीं है, क्योंकि वर्ण कुछ जानता नहीं है, इसलिए वर्ण अन्य है और ज्ञान अन्य ।
- गन्ध ज्ञान नहीं है, क्योंकि गन्ध कुछ जानता नहीं है; इसलिए ज्ञान अन्य है और गन्ध अन्य ।
- रस ज्ञान नहीं है, क्योंकि रस कुछ जानता नहीं है; इसलिए ज्ञान अन्य है और रस अन्य ।
- स्पर्श ज्ञान नहीं है, क्योंकि स्पर्श कुछ जानता नहीं है, इसलिए ज्ञान अन्य है और स्पर्श अन्य ।
- धर्म ज्ञान नहीं है, क्योंकि धर्म कुछ जानता नहीं है; इसलिए ज्ञान अन्य है और धर्म अन्य ।

• धर्म ज्ञान नहीं है, क्योंकि धर्म कुछ जानता नहीं है; इसलिए ज्ञान अन्य है और धर्म अन्य।

• अधर्म ज्ञान नहीं है, क्योंकि अधर्म कुछ जानता नहीं है; इसलिए ज्ञान अन्य है और अधर्म अन्य।

• काल ज्ञान नहीं है, क्योंकि काल कुछ जानता नहीं है, इसलिए ज्ञान अन्य है और काल अन्य।

• आकाश ज्ञान नहीं है, क्योंकि आकाश कुछ जानता नहीं है; इसलिए ज्ञान अन्य है और आकाश अन्य।

• अध्यवसान ज्ञान नहीं है, क्योंकि अध्यवसान अचेतन है, जड़ है; इसलिए ज्ञान अन्य है और अध्यवसान अन्य।

• जीव ज्ञान है, क्योंकि वह निरन्तर जानता है, इसलिए वह ज्ञायक है तथा ज्ञान है, और ज्ञान ज्ञायक से अभिन्न है।

卐

कर्मयोग का शंखनाद हो, गुञ्जित हो धरती–अम्बर।
जन मंगलकर श्रम की श्री से, सुस्मित हो नारी–नर॥

卐

सोच रहे क्या, आने वाला, कल का दिन कैसा होगा?
चलो सहज मन से प्रभु-पथ पर, क्या मिला, अच्छा होगा॥

—अमर मुनि

० शाश्वत मूल्य

राग-द्वेष को पैदा करने में शब्द, रूप गंध, रस, और स्पर्श-ये पांच वस्तुएं विशेष सहायक होती हैं, महावीर ने उस सम्बन्ध में मानव की दुर्बलता को ध्यान मे रखकर मार्ग सुझाते हुए कहा :

0 शब्द श्रोतेन्द्रिय का विषय है। कान मे पड़े हुए शब्दो को न सुनना शक्य नही। कान मे पड़े हुए शब्दो मे राग-द्वेष का परित्याग करो।

0 रूप चक्षु का विषय है। आंखो के सामने आये हुए रूप को न देखना शक्य नही। आंखो के सामने आये हुए रूप मे राग-द्वेष का परित्याग करो।

0 गंध नाक का विषय है। नाक के समीप आयी हुई गंध को न सूंघना शक्य नही। नाक के समीप आयी हुई गंध मे राग-द्वेष का परित्याग करो।

0 रस जिह्वा का विषय है। जिह्वा पर आये हुए रस का आस्वाद न लेना शक्य नही। जिह्वा पर आये हुए रस मे राग-द्वेष का परित्याग करो।

0 स्पर्श शरीर का विषय है। स्पर्श का विषय उपस्थित होने पर उसका अनुभव न करना शक्य नही। स्पर्श का विषय उपस्थित होने पर उसमे राग-द्वेष न करो।

0 देश काल के अनुसार संदर्भ बदलते रहते हैं, युग नया परिवेश धारण करता है। लेकिन शाश्वत मूल्यो में कभी परिवर्तन नहीं होता। भगवान महावीर ने जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा की, वे शाश्वत हैं। उनका आरम्भ वैयक्तिक जीवन में होता है। इसलिए कहा गया है कि वैयक्तिक साधना समाज का अधिष्ठान बनती है।

—आचार्य तुलसी

राजस्थानी

भगवान महावीर री जीवन—झाँकी

मुनि श्री धनराज (प्रथम)

[कुँवर तेजा की राग]

आज आपां सारा मिल—जुल मंगल गीत गावां हो,
मोच्छव मनावां महावीर रो मोच्छव मनावां निरवाण रो
॥ ध्रुवपद ॥

प्रश्न : अहो गुरांशा ! महावीर प्रभु किसै नगर में जनम्या हो,
मात—पितादिक कुण हा महावीर रा

उत्तर : सुणो श्रावकां ! क्षत्रियकुंड नगर में प्रभुजी जनम्या हो,
त्रिशला देवी माता महावीर रा
पूज्य पिता सिद्धारथ राजा काकाजी सुपार्श्व हो,
बड़ बंधव श्री नंदीवर्धन शोभता
पत्नि हा जशोदा प्रियदर्शना सुपुत्री हो,
जामाता जामाली जगदीश रा

प्रश्न : अहो गुरांशा ! महावीर प्रभु दीक्षा किण दिन लीधी हो,
केवल ज्ञान उपायो प्रभुजी किण दिने

उत्तर : सुणो श्रावकां ! तीस साल तो घर में प्रभुजी रहिया हो,
मिगसर बिद दसमी में संजम आदर्यो
साढ़े बारह वर्षां ताईं नाना विध तप कीधो हो,
पाणी भी नहीं पीधो[1] प्रभुजी धन्य है

1— ये निर्जल तप करते थे

साढे बारह वर्षा माही दोय घडी री निद्रा हो
सदा जागकर कर्मों साथे जूझ्या
विविध अभिग्रह धारया प्रभुजी सुणता इचरज आवै हो,
बांकोजी अभिग्रह तेरह बोल रो
उपसर्गा री वाता सुणतां मनडो थर-थर धूजै हो,
ऊभा तो हो जावै तन रा रूंगटा
शूलपाणी यक्षे प्रभु ने भारी दुखडा दीधा हो,
डंक लगाया क्रोधी चंडकोशिये
अज्ञानी लोका मिल प्रभु नै चोर तणी पर पकड़या हो
लारै तो लगाया प्रभु रै कूतरा
काना मे लगाई कीला खीर पगा पर राधी हो,
संगम री करतूता कहणी दोहिली
भम्नणी पर धीरा प्रभुजी नो पिण लेश न डोल्या हो,
जिन दशमी वैसाखी केवल पामियो
प्रश्न : अहो गुरांसा ! महावीर प्रभु तीरथ किण विध थाप्या हो,
तीर्थंकर किम बाज्या इण भरत मे
उत्तर : सुणो श्रावका ! ऋजुपाला[2] रै काठै केवल उपनो हो,
गोखव गरता चौसठ इंदर आविया
खाली गई देशना पहली हुवो अचम्भेरो भारी हो,
पुरी अपापा प्रभुजी ताम पधारिया
समवसरण मे गौतम आदि ग्यारह पंडित आया हो,
तत्त्व समझ कर सगलां संजम आदर्यो

२— ऋजुवालिका नदी

चंदनबाला आदि साध्वियां आनदादि श्रावक हो,

सुलसा प्रमुख हुई है लाखां श्राविका

चार तीर्थ री स्थापना कर महावीर प्रभू बणिया हो,

भरत क्षेत्र मे तीर्थंकर चौबीसवा

र : अहो गुरांसा ! महावीर प्रभु काई धर्म सुणायो हो,

मारग बताया किसरा मोक्ष रा

र सुणो श्रावकां ! दोय तरह रो प्रभुजी धर्म सुणायो हो,

श्रुत चारित्र सुहायो गायो गणधरां

पर चारित धरम रा प्रभुजी दोय भेद कर दीधा हो,

एक श्रावक रो दूजो साधु रो

ज्ञानादिक चारूं ही मारग मोक्ष रा बताया हो,

धारणवाला जीव अनंता तिर गया

न : अहो गुरांसा ! किता बरस प्रभु महिमण्डल में विचरया हो,

किसै ठिकाणै पाया पद निरवाण नै

तर : सुणो श्रावकां ! केवल पाकर तीस बरस प्रभु विचरया हो,

लाखां ही जीवां नै प्रतिबोधिया

जात-पांत रो भेद प्रभुजी रच मात्र नहिं राख्यो हो,

स्थान दियो सगलां नै निज संघ मे

गौतमजी हा ब्राह्मण मुनि हरिकेशी हरिजन कहिया हो,

मुखिया श्रावक आनंदजी पटेल हा

जैन धरम री ज्योति प्रभुजी जग में खूब जगाई हो,

दुनिया भर में फैल रह्यो है चानणो

चौमासो करवा प्रभु आखिर पावापुरी पधारया हो,
हस्तपाल राजा री मानी वीनती
काती विद तेरस री राते प्रभु सथारो धारयो हो,
मावस मध्य निशा मे कारज सिद्ध हुवा
करवाने निर्वाण मोच्छव इन्द्रादिक सहु मिलिया हो,
अंधेरी मावस भी बण गई चानणी
प्रश्न : अहो गुराया ! वर्ष किता निर्वाण दिवस नै हुवा हो,
जिज्ञासा पूरी है म्हारै चित्त मे
उत्तर : सुणो श्रावका ! सदी हो गई पूरी आज पचीस हो,
भारत मे छाई है भारी रगरली
भारत री सरकार भी निर्वाण दिन मनावै हो,
मोच्छव तो रचावै गाम-गाम मे
त्याग-तपस्या इण मौकै ज्यादा सू ज्यादा करणो हो,
जाप ध्यान मे इण मनडा नै जोडणो
महावीर की वाणी घर-घर चाहीजै पहुंचाणी हो,
ऐसी इण सू शासन री प्रभावना
दो हजार इकतीसै हुवो पचपदरै चौमासो हो,
ज्ञान-ध्यान रो उद्यम आछो हो रह्यो
महावीर री जीवन-झांकी न्हांकी-सी रचाई हो,
घर-घर मे धन मुनि रै खुशिया छा रही

○ आचार्य तुलसी और अणुव्रत

सूरज के निकलने के बाद अन्धेरा भाग खड़ा होता है और उसके अस्त होते ही चारो ओर अन्धकार अपनी चादर फैला देता है, परन्तु उस हालत मे भी यदि हमे कोई छोटा सा दीपक मिल जावे, तो अपना रास्ता देख सकते हैं। आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत-आन्दोलन के रूप मे हमे एक चिराग दिया है, एक ज्योति दी है, उसे लेकर हम आज अनैतिकता के तिमिराच्छन्न वातावरण मे नैतिक पथ प्राप्त कर सकते हैं। उसकी रोशनी मे हम अपना काम निकाल सकते हैं।

—यू० एन० ढेबर

राष्ट्र संत आचार्य तुलसी

आचार्य तुलसी जनता मे और जनता आचार्य तुलसी से अपरिचित नही है। अपरिचित को परिचित कराना जितना कठिन नही है, उतना कठिन है परिचित को परिचित कराना। वास्तव में वे जो है, उसका लेखा अनुभूति मे है, शब्दो मे नही।

आपकी जन्म भूमि लाडनू (राजस्थान) है। आप ११ वर्ष की आयु मे जैन मुनि बने। २२ वर्ष की अवस्था मे श्वेताम्बर तेरापथ शाखा के आचार्य पद का दायित्व आपको सौंपा गया। ३८ वर्ष की आयु मे आपने अणुव्रत-आन्दोलन के नाम से एक नैतिक आन्दोलन का प्रवर्तन किया। गत २५ वर्षो से धर्म के शाश्वत सत्यों के द्वारा जन-जीवन को प्रभावित एवं व्रत परम्परा के प्रति लोकमानस को जागृत करने मे सतत् प्रयत्नशील है। इसलिए वे युग धर्म के व्याख्याता । युग प्रधान आचार्य तुलसी के रूप मे आप लोक-प्रतिष्ठित है।

कठोर-चर्या, भूख और प्यास से अविचलित रह कर वे ग्राम-ग्राम मे घूम रहे है। लगभग ४० हजार माइल की पद-यात्रा उन्होंने अब तक की है, इसलिए वे महान् परिव्राजक भी है।

सब वर्ग के लोगों ने उन्हें सुना है, समझने का प्रयत्न किया है। वे सबके होकर ही सब के पास पहुंचे हैं, इसलिए वे विशाल दृष्टि हैं।

अध्ययन, अध्यापन स्वाध्याय और साहित्य-निर्माण ये उनकी सहज प्रवृत्तियां हैं इसलिए वे जंगम विद्यापीठ हैं।

उन्होंने अनेकान्त का हृदय छुआ है, इसलिए वे ध्रुव और परिवर्तन की मर्यादा के मर्मज्ञ हैं।

जीवन में उपस्थित हर कठोर क्षण में वे सदा सहिष्णु रहे हैं, इसलिए वे क्षमा के ज्वलन्त प्रतीक हैं।

अनेक मानवीय अल्पताओं के होते हुए भी वे महान् हैं। उनकी गति महान् लक्ष्य की ओर है, वे अपने को सिद्ध नहीं मानते! साध्य के प्रति अनुराग है, साधना के प्रति आस्था है और सिद्धि के विश्वास है। संक्षेप में उनकी जीवनी आस्था की कहानी है। लोक-जीवन में 'अणुव्रत' के माध्यम से चारित्रिक प्रतिष्ठापना द्वारा अपना सृजन किया है। इसलिए वे अणुव्रत अनुशास्ता हैं।

आध्यात्मिक नेतृत्व

[श्री जैनेन्द्रकुमार]

आचार्य श्री तुलसी उन पुरुषों में हैं, जिनके व्यक्तित्व से पद कभी ऊपर नहीं हो पाता। वे जैनमत के तेरापंथी सम्प्रदाय के पट्टधर आचार्य हैं और इस पद की गरिमा और महिमा कम नहीं है। वे एक ही साथ आध्यात्मिक और लौकिक हैं। किन्तु तुलसी इतने जीवन्त और प्राणवन्त व्यक्ति हैं कि उस आसन का गुरुत्व स्वयं फीका पड़ सकता है। वेश-भूषा से वे जैनाचार्य हैं किन्तु आन्तरिक निर्मलता और संवेदन-क्षमता से वे सभी मत और सभी वर्गों के आत्मीय बन सके हैं। मेरा जितना सम्पर्क आया है, मैंने उन्हें सदा जागृत व तत्पर पाया है। शैथिल्य कहीं देखने में नहीं आया। प्रमाद और अवसाद उनमें या उनके निकट टिक नहीं पाता। आसपास का वातावरण उनकी कर्मशीलता से चैतन्य और उन्नत बना दिखता है। परिस्थिति से हारने वाले वे नहीं हैं, आस्था के बल से उसे चुनौती ही देते रहते हैं। परम्परा से उच्छिन्न नहीं हैं। लेकिन नव्यता के प्रति भी उद्यत हैं। उनकी नेतृत्व की क्षमता अभिनन्दनीय है। नेतृत्व उस संघ का जिसका प्रत्येक सदस्य निस्पृह, निस्वार्थ और सर्वथा मुक्त हो, आसान काम नहीं है। किसी प्रकार का लोभ और भय वहाँ व्यवस्था में सहारा नहीं दे सकता। अन्तर्भूत आत्मतेज ही इस नैतिक नेतृत्व को सम्भव बनाये रख सकता है। तुलसी में उसी का प्रकाश दीखता है और मुझे उनके सान्निध्य से सदा लाभ हुआ है।

○ अणुव्रत आन्दोलन

0 व्रतों का ग्रहण जीवन का संकल्प है। यह संकल्प है—अनैतिकता के विरुद्ध संघर्ष का और नये नैतिक मूल्यों के प्रतिष्ठापन का। इस संघर्ष और ग्रहण के मूल में आत्मोत्सर्ग का उदय है।

0 व्रतों का पालन आत्मव्रत है। निष्ठा उसकी सहचरी है। यही जीवन की नैतिक शक्ति है।

0 व्रतों के पालन के साथ आत्मालोचन भी आवश्यक है। आत्मालोचन का अर्थ आत्म-दर्शन है। दर्शन ही जीवन का सार है, जो व्यक्ति को सदैव नित्य नई शक्ति से आविर्भूत करता है।

0 इसी शक्ति से प्रेरित हो अणुव्रती अपने संकल्प पर दृढ़ रहें और अणुव्रत के राज-मार्ग पर एक नई नैतिक सृष्टि का आविर्भाव करें, यही मेरी शुभ-कामना युक्त आत्म-भावना है।

—आचार्य श्री तुलसी

O अणुव्रत की भूमिका

[श्री मोरारजी भाई देसाई]

0 अणुव्रत के साथ मेरा सम्बन्ध वर्षों से रहा है और मेरा पक्ष भी इस आन्दोलन के साथ तारतम्य रुप मे बना हुआ है। इसका अर्थ यह नही कि मैं आचार्य तुलसी का अनुयायी हू । बल्कि इसलिए कि राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण एव उन्नयन की दिशा मे अणुव्रत एक महत्वपूर्ण भूमिका का सकलन कर रहा है। उसके साथ मेरी अभि-रुचि है। इसका अर्थ यह भी नही कि आचार्य श्री के हर विचारो के साथ मेरा समर्थन है। कुछ बातो मे नही भी है। फिर भी राष्ट्र के चरित्र को ऊपर उठाने मे, नैतिक-क्रान्ति के आविर्भाव मे हम एक है। इसीलिए अणुव्रत से मेरा लगाव है।

0 सहज धर्म ही सत्य की साधना है। साधना है वहा धर्म है। असत्य जीवन का दृष्टिकोण नहीं है।

0 मनुष्य-मनुष्य का स्वभाव एक दूसरे का पूरक बने। परस्पर सद्भाव जाग्रत हो और साधना जीवन का लक्ष्य बने। अणुव्रत इसी सत् भावना का प्रेरक है।

0 सत्य को मानना ईश्वर को पाना है। ईश्वर को मानने वाला किसी तरह की छलना करे, यह धर्म स्वभाव नहीं है।

0 अणुव्रत सत्य की प्रेरणा देता है। जीवन को उद्बोध देता है। सहज साधना की ओर खीचता है। यह एक दूसरे के उत्थान का, कल्याण-साधना का प्रतीक है। राष्ट्रीय चरित्र के उद्बोधन में अणुव्रत की बड़ी भूमिका है, जिसकी कि आज देश को सर्वाधिक अपेक्षा है।

अणुव्रत के निर्देशक तत्त्व

अहिंसा

१ किसी के प्रति दुर्भाव या दुश्चिन्तन नही करना ।

२ किसी के प्रति अपशब्दो का प्रयोग नही करना ।

३ निर्दय व्यवहार और प्राणवध नही करना ।

४ शोषण नही करना ।

५ मानवीय एकता मे विश्वास रखना—आर्थिक, भौगोलिक, जातीय, साम्प्रदायिक, भाषायी एव रग-भेद के कारण किसी मनुष्य को हीन या उच्च नही मानना ।

६ सह-अस्तित्व मे विश्वास रखना—विरोधी विचार रखने वाले व्यक्ति और समाज को बल-प्रयोग से मिटाने का प्रयत्न नही करना ।

७ स्वतन्त्रता मे विश्वास रखना—किसी के वैयक्तिक एव सार्वभौम अधिकारो का अपहरण नही करना ।

८ बुराइयो का अहिंसात्मक प्रतिरोध करना ।

सत्य

१. यथार्थ चिन्तन करना ।

२ यथार्थ भाषण करना ।

३ व्यवसाय, व्यवहार व दैनिक चर्या मे सत्य का प्रयोग करना ।

४. अभय और निष्पक्ष रहना ।

५ कथनी और करनी मे सामञ्जस्य स्थापित करना ।

अचौर्य

१. दूसरों की वस्तु को चोरवृत्ति से नहीं लेना।

२. व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिकता रखना।

३. सार्वजनिक सम्पत्ति का अनावश्यक उपयोग व दुरुपयोग नहीं करना।

ब्रह्मचर्य

१. भोग-विरति की साधना करना।

२. पवित्रता का अभ्यास करना।

३. स्वाद-संयम करना।

४. स्पर्श-संयम करना।

५. चक्षु-संयम करना।

अपरिग्रह

१. धन को आवश्यकता-पूर्ति का साधन मानना, जीवन का लक्ष्य नहीं।

२. अनावश्यक सम्पत्ति का संग्रह नहीं करना।

३. दैनिक उपभोग्य वस्तुओं का अपव्यय नहीं करना।

४. अमूर्च्छा (अनासक्ति) का अभ्यास करना।

१ मैं चलने-फिरने वाले निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक व
नहीं करूंगा।

२. मैं किसी पर आक्रमण नही करूंगा और आक्रमक नीति का
समर्थन भी नही करूंगा।

३ मैं हिंसात्मक उपद्रवो एवं तोड़-फोड मूलक प्रवृत्तियों में भ
नही लूंगा।

४ मैं मानवीय एकता मे विश्वास रखूंगा—

क—मैं जाति, वर्ण आदि के आधार पर किसी को अस्पृश्य
ऊंच-नीच नही मानूंगा।

ख—मैं सम्पत्ति, सत्ता आदि के आधार पर किसी को हीन उ
नहीं मानूंगा।

५ मैं सब धर्म-सम्प्रदायो के प्रति सहिष्णुता का भाव रखूंगा।

६ मैं व्यवसाय और व्यवहार मे सत्य की साधना करूंगा।

७ मैं चोरवृत्ति से किसी की वस्तु नही लूंगा।

८ मैं स्वदार (या स्वपति-) सन्तोषी रहता हुआ ब्रह्मचर्य
साधना करूंगा।

९. मैं रुपये और अन्य प्रलोभन से मत (वोट) न लूंगा और
दूंगा।

१०. मैं सामाजिक कुरूढ़ियो को प्रश्रय नहीं दूंगा।

११ मैं मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नही करूंगा।

मैं सम्बन्धित वर्गीय अणुव्रतों का पालन करूंगा।

वर्गीय - अणुव्रत

विद्यार्थी-अणुव्रत

१ मैं परीक्षा मे अवैधानिक उपायो से उत्तीर्ण होने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

२ मैं हिंसात्मक उपद्रवों एव तोड़-फोड मूलक प्रवृत्तियों मे भाग नहीं लूंगा।

३ मै अश्लील शब्दो का प्रयोग नही करूंगा व अश्लील साहित्य नही पढूंगा।

४ मैं मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नही करूंगा।

५ मैं रुपये व अन्य प्रलोभन मे मत (वोट) न लूंगा और न दूंगा।

६. मैं व्यवहार मे प्रामाणिकता और सत्य की साधना करूंगा।

७. मैं माता-पिता व गुरुजनो के प्रति विनम्र रहूंगा।

शिक्षक-अणुव्रत

१ मैं विद्यार्थी के बौद्धिक विकास के साथ उसके चरित्र-विकास का ध्यान रखूंगा।

२. मैं अवैध उपायों से विद्यार्थी के उत्तीर्ण होने मे सहायक नहीं बनूंगा।

३ मैं अपने विद्यालय मे दलगत राजनीति को स्थान नहीं दूंगा, न उसके लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करूंगा।

२. मैं हिंसात्मक उपद्रवों एवं तोड़-फोड़ मूलक प्रवृत्तियों का आश्रय नहीं लूंगा।

३ मैं मद्यपान व धूम्रपान नहीं करूंगा तथा नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।

४ मैं जुआ नहीं खेलूंगा।

५ मैं बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, मृत्युभोज आदि कुरीतियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।

६. मैं अपने कर्तव्य-पालन में जान-बूझकर विलम्ब या अन्याय नहीं करूंगा।

कृषक-अणुव्रत

१ मैं पारिश्रमिक-वितरण में अवैध उपायों को काम में नहीं लूंगा।

२ मैं अपनी उपज को ऊंचे मूल्य की प्राप्ति के हेतु लोभवश छिपाकर नहीं रखूंगा।

३. मैं अपने आश्रित पशुओं के साथ क्रूर व्यवहार नहीं करूंगा।

४. मैं समस्याओं के समाधान के लिए हिंसात्मक तथा अवैधानिक उपायों को काम में नहीं लूंगा।

५ मैं विवाह व अन्य आयोजनों में अपव्यय नहीं करूंगा।

६ मैं मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।

७ मैं सामाजिक कुरीतियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।

अणुव्रत - गीत

सयममय जीवन हो
नैतिकता की सुर–सरिता मे जन–जन मन पावन हो
सयममय जीवन हो

अपने से अपना अनुशासन, अणुव्रत की परिभाषा
वर्ण, जाति या सम्प्रदाय से, मुक्त धर्म की भाषा
छोटे–छोटे सकल्पो से मानस–परिवर्तन हो
सयममय जीवन हो

मैत्री–भाव हमारा सबसे प्रतिदिन बढता जाए
समता, सह–अस्तित्व, समन्वय–नीति सफलता पाये
शुद्ध साध्य के लिए नियोजित सदा शुद्ध साधन हो
सयममय जीवन हो

विद्यार्थी या शिक्षक हो मजदूर और व्यापारी
नर हो नारी बने नीतिमय जीवन–चर्या सारी
कथनी–करनी की समानता मे गतिशील चरण हो
सयममय जीवन हो

प्रभु बन कर के ही हम प्रभु की पूजा कर सकते है
प्रामाणिक बनकर ही सकट–सागर तर सकते है
आज अहिंसा शौर्य वीर्य सयुक्त जीवन–दर्शन हो
सयममय जीवन हो

सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से राष्ट्र स्वय सुधरेगा
'तुलसी' अणु का सिहनाद सारे जग मे प्रसरेगा
मानवीय आचार–सहिता मे अर्पित तन–मन हो
सयममय जीवन हो

उठो साथियों !

उठो साथियो ! राष्ट्र देवता ने फिर तुम्हे पुकारा !
आओ मगल-पथिक पथ की जडता को हर जाओ,
आओ मगल-पथिक तुम्हारा आमत्रण है आओ,
जय का हर्षोल्लास, विजय के स्वर हो गये पुराने,
जन, मन जीवन में नव चेतनता भरने को गाओ,
भेद-भाव का कलुष मिटादो, तोडो भ्रम की कारा !
राष्ट्र देवता ने फिर तुम्हें पुकारा !!

हिमगिरि का गौरव कहता है झुकना है मिट जाना,
गगा का सदेश पथ पर रुकना है मिट जाना,
प्रिय अतीत का स्वप्न और रुचि वर्तमान की माया,
रहे हमारी कुठा के हित आये बने न बहाना,
सत्य-साधना का वह व्रत लो जो दुनिया से न्यारा !
राष्ट्र देवता ने फिर तुम्हे पुकारा !!

आत्मोदय पथ पर के ये पद-चिह्न बहुत ही पावन,
है अणुव्रत की रीति मनोरम, साम्य भाव मन भावन,
दिखा मुक्ति मन्दिर मे जय के अगणित कठो का स्वर,
है अनुपम निर्माण यज्ञ की वेदी का आराधन,
जिसका अनुगत आज नहीं तो होगा, कल जग सारा !
राष्ट्र देवता ने फिर तुम्हे पुकारा !!

भावात्मक एकता राष्ट्र की ही सामूहिक गति हो,
पूर्ण करे उसको जो कुछ भी विगत वर्ष की क्षति हो,
पथ में फूल-शूल दोनों की हो न तनिक भी चिन्ता,
हो विज्ञान सत्य में पथ पर प्रतिदिन नयी प्रगति हो,
नियमबद्ध बन सके कि जिससे फिर यह देश हमारा !
राष्ट्र देवता ने फिर तुम्हें पुकारा !!

—विद्यावती मिश्र

○ तुलसी वाणी

○ यम से व्यक्ति का विकास होता है। नियम व्यक्ति को विकास की दिशा देता है। लेकिन कभी-कभी वह जड़ता की ओर भी ले जाता है।

○ नियम जीवन-यम के विकास में सहायक है तो यम उसके लिए प्रकाश-पुंज है।

○ नागरिक दरिद्रता का मुख्य कारण नियमों की परिधि बढ़ाना व यम की प्रतिष्ठा घट चलना है।

○ अणुव्रत के माध्यम से हम मुक्त तक पहुंचते हैं। यह मूल प्रक्रिया है। यम की प्रतिष्ठा उसमें सहायक है।

○ अणुव्रत ने दिशा दी है कि यम पहले और नियम बाद में। यम को भुलाकर नियमों की प्रतिष्ठा कुछ भी नहीं है।

○ अणुव्रत का मूल आधार यम है, जिस पर नियमों का महल प्रतिष्ठापित है।

○ अनैतिकता स्वाभाविक नहीं है, वह प्रेरणा-जनित है। उसकी [illegible] प्रेरणाएं हैं—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह। इनकी प्रेरक हैं—स्वार्थ, भय, लोभ आदि मन की वृत्तियां। इन वृत्तियों के शोधन से हिंसा-वृत्ति का शमन होता है और हिंसा-वृत्ति के शमन से अनैतिकता का शमन होता है।

0 केवल परिस्थितियों की अनुकूलता से अनैतिकता नहीं मिटती। उसके मिटने में हिंसा तथा उसकी प्रेरक वृत्तियों का मिटना बहुत अपेक्षित है।

0 परिस्थितियों की अनुकूलता होने पर उनसे उत्पन्न होने वाले अनैतिक व्यवहार मिट जाते हैं, किन्तु व्यक्ति की मूल वृत्तियों से उत्पन्न होने वाले व्यवहार नहीं मिटते।

0 व्यक्ति में हीनता की वृत्ति होती है, उससे वह अपने को दूसरों से हीन मानता है, गर्व की वृत्ति से वह अपने को दूसरों से उच्च मानता है। आग्रह की वृत्ति से वह दूसरों के अस्तित्व को अस्वीकार कर देता है। अधिकार, वृत्ति से वह दूसरों को अपने अधीन बनाए रखना चाहता है।

0 भय, पक्षपात, लोभ, वासना-इन वृत्तियों से प्रेरित हो व्यक्ति असत्यवादी, अप्रामाणिक, विलासी और संग्रह-लोलुप बनता है।

0 अध्यात्म का दार्शनिक पक्ष यह है कि आर्थिक समृद्धि और भौतिक विकास से इन वृत्तियों का परिष्कार नहीं होता। इनका परिष्कार मन की पवित्रता सन्तुलन और स्थिरता से होता है।

0 राजनीति व्यवस्था देती है और अणुव्रत हृदय-परिवर्तन। कोरे अणुव्रत से समाज की व्यवस्था नहीं बनती और कोरी व्यवस्था से समाज में स्वतन्त्रता निष्पन्न नहीं होती। व्यवस्था और स्वतन्त्रता दोनों के योग से समाज में सौन्दर्य का विकास होता है।

0 चिन्ता अपनी नहीं, जितनी सृष्टि की हो चली है। सृष्टि वाले स्वय के निर्माण की ओर लक्ष्य नही करते तो यह सृष्टि बालू के किले की तरह है, जो कभी भी गिर सकता है।

0 पर-उपदेश से समाज नही बनता। क्रान्ति भाषणो से नही आती। वह क्रान्ति जड है, जो बाह्य जीवन को उभार देती है, लेकिन स्व को भूला देती है। क्रान्ति के नाम पर यह वचना है।

0 समाज-सेवा एव राष्ट्रोत्थान की चिन्ता से हम दुर्बल नहीं बने। अपने आत्म निर्माण को केन्द्रित कर लोकोदय का लक्ष्य अपनाये तो नये समाज की परि कल्पना स ज शक्ति का मार्ग बना लेगी।

0 प्राणी मात्र के प्रति सयम है, समता है, मैत्री है, यह अहिंसा है।

0 अहिंसा अपने परिवार, कुटुम्ब, समाज एव राष्ट्र तक सीमित नही रहती। उसकी परिधि विशाल है। उसकी गोद मे जगत के प्राणी मात्र सुख की सास लेते हैं।

0 अहिंसा अर्थात् यो कहिये हिंसा को त्यागने का मुख्य उद्देश्य अपना आत्म कल्याण है।

0 हिंसा करने वाला किसी दूसरे का अहित ही नही करता, बल्कि अपनी आत्मा का भी अनिष्ट करता है—अपना पतन करता है, आत्मा का वैर बढ़ाता है शत्रु पैदा करता है। यदि मनुष्य अपने आप किसी की हिंसा न करे तो मैं कह सकता हू कि उसका कोई भी शत्रु नहीं है।

0 कोई भी मानव पर—उपकार एव दूसरो की रक्षा के लिये अहिंसा नही अपनाता। उसमे अपना स्वार्थ अन्तर्हित रहता है। अपनी आत्मा को उन्नत और उज्ज्वल बनाने के लिये अहिंसा का प्रयोग किया जाता है। उपकार और दूसरो का बचाव तो उसमे स्वत निहित है।

परमेष्ठी - वन्दना

वन्दना आनन्द–पुलकित, विनयनत हो मै करू ।
एकलय-हो एकरस हो भाव तन्मयता वरू ॥

卐

सहज निज आलोक से भासित स्वय सबुद्ध है ।
धर्म तीर्थंकर शुभकर वीतराग विशुद्ध है ॥
गति–प्रतिष्ठा–त्राण दाता, आवरण से मुक्त है ।
देव अर्हम् दिव्य-योगज-अतिशयो से युक्त है ॥ वन्दना

卐

बन्धनो की शृखला से मुक्त, शक्ति स्रोत है ।
सहज निर्मल, आत्मलय मे सतत ओत प्रोत है ॥
दग्धकर भव बीज अ कुर अरुज अज अविकार है ।
सिद्ध परमात्मा परमईश्वर अपुनरवतार है ॥ वन्दना

卐

अमलतम आचार धारा मे स्वय निष्णात है ।
दीपसम शत दीप दीपन के लिए प्रख्यात है ॥
धर्म शासन के धुरन्धर धीर धर्माचार्य है ।
प्रथम पद के प्रवर प्रतिनिधि प्रगति मे अनिवार्य ॥ वन्दना

द्वादशांगी के प्रवक्ता, ज्ञान–गरिमा–पुंज है ।
साधना के शान्त उपवन मे सुरम्य निकुंज है ॥
कृत्य में स्वाध्याय मे सलग्न रहते है सदा ।
उपाध्याय महान श्रुतधर, धर्म शासन-सम्पदा ॥ वन्दना

卐

लाभ और अलाभ मे, सुख-दुख मे मध्यस्थ है ।
शान्तिमय, वैराग्यमय, आनन्दमय आत्मस्थ है ॥
वासना से विरत आकृति, सहज परम प्रसन्न है ।
साधना–[illegible] मे आसन्न है ॥ वन्दना

—आचार्य श्री तुलसी

अर्हत वन्दना

१. णमो अरहंताणं,
णमो सिद्धाणं,
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाण,
णमो लोए सव्व–साहूण ॥
एसो पंच णमुक्कारो,
सव्व पावप्पणासणो ।
मगलाणं च सव्वेसि,
पढमं हवइ मंगलं ॥

२. जे य वुद्धा अईक्कता,
जे य वुद्धा अणागया ।
संति तेसि पइट्ठाण,
भूयाण, जगइ जहा ॥

३ गे मुयं च मे, अज्झत्थिय च मे—
वंध–पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव

४. पुरिसा ! तुम मेव तुमं मित्ता,
कि वहिया मित्त मिच्छसि ?

५. पुरिसा ? अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ,
एवं दुक्खा पमोक्खसि ।

६ पुरिसा ! तुमसि नाम सच्चेव,
जं 'हंतव्व' ति मन्नसि ।

७ सव्वे पाणा ण हंतव्वा
एस धम्मे धुवे, णिइए, सासए ।

८ पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि ।

९. सच्चं भयवं ।

१० सच्चं लोयम्मि सारभूयं ।

११ इणमेव णिग्गंथं पावयणं सच्चं ।

१२. उट्ठिए णो पमायए ।

१३. सव्वतो पमत्तस्स भयं ।

१४. समया धम्म मुदाहरे मुणी ।

१५ लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।।
समो निंदा पसंसासु तहामाणावमाणओ ।।

१६. अणिस्सिओ इहलोए,
परलोए अणिस्सिओ ।
वासी चंदण कप्पो य,
असणे अणसणे तहा ।।

१७ अप्पा कत्ता विकत्ता य,
दुहाण य सुहाण य
अप्पा मित्तममित्तं च,
दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ।।

१८ अप्पा नईवेयरणी,
अप्पा मे कूडसामली ।

स्रोत]

अप्पा कामदुहा धेणु,
अप्पा मे नंदण वण ॥

१९ जो सहस्स सहस्साण,
संगामे दुज्जए जिणे ।
एग जिणेज्ज अप्पाणं,
एस से परमो जओ ॥

२०. खामेमि सव्वजीवे,
सव्वेजीवा खमतु मे ।
मित्ति मे सव्व भु,
वेरं मज्झ न केणइ ॥

२१ अरहंता मंगलं,
सिद्धा मगलं,
साहू मगल
केवलि-पण्णत्तो धम्मो मगलं ।
अरहंता लोगुत्तमा,
सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा,
केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।
अरहंते सरण पवज्जामि,
सिद्धे सरण पवज्जामि,
साहू सरण पवज्जामि,
केवलि-पण्णत्त धम्म सरण पवज्जामि ।

वन्दना गीत

[तर्ज.— जो व्यथाए प्रेरणा दें उन व्यथाओ को दुलारो]

भावभीनी वन्दना भगवान् चरणो मे चढाए ।
शुद्ध ज्योतिर्मय निरामय रूप अपने आप पाए ॥
भाव भीनी ॥ध्रुव॥

ज्ञान से निज को निहारें, दृष्टि से निज को निखारे ।
आचरण की उर्वरा में, लक्ष्य तरुवर लहलहाए ॥
भाव भीनी

सत्य मे आस्था अचल हो, चित्त संशय से न चल हो ।
सिद्ध कर आत्मानुशासन, विजय का सगान गाए ॥
भाव भीनी

बिन्दु भी हम सिन्धु भी है, भक्त भी भगवान् भी है ।
छिन्न कर सब ग्रन्थियो को, सुप्त आनन्द को जगाए ॥
भाव भीनी ...

धर्म है समता हमारा, कर्म समतामय हमारा ।
साम्ययोगी बन हृदय से स्रोत समता का बहाए ॥
भाव भीनी

प्रयाण गीत

प्रभो ! तुम्हारे पावन पथ पर, जीवन अर्पण है सारा
बढ़ते चलें हम रुकें न क्षण भी, हो यह दृढ संकल्प हमारा
।। ध्रुव

प्राणो की परवाह नही है प्रण को अटल निभायेंगे
नही अपेक्षा है औरो की, स्वयं लक्ष्य को पायेंगे
एक तुम्हारे ही वचनो का भगवान् प्रतिपल सबल सहारा
।।१

ज्यो ज्यो चरण बढ़ेंगे आगे, स्वतः मार्ग बन जायेगा
हटना होगा उसे बीच मे जो बाधक बन जायेगा
रुक न सकेगी मुड़ न सकेगी, सत्य क्रांति की उज्जवल धारा
।।२।

आत्म शुद्धि का जहा प्रश्न है सम्प्रदाय का मोह न हो ।
चाह न यश की और किसी मे भी कोई विद्रोह न हो ।
स्वर्ण विघर्षण से ज्यो सत्य निखरता संघर्षों के द्वारा ।
।।३।।

आग्रहहीन गहन चिंतन का द्वार हमेशा खुला रहे ।
कण कण में आदर्श तुम्हारा पय-मिश्री ज्यों घुला रहे ।
जागें स्वयं जगायें जग को हो यह सफल हमारा नारा ।
।।४।।

नया मोड़ हो उसी दिशा में नई चेतना फिर जागे ।
तोड़ गिरायें जीर्ण शीर्ण जो अन्ध रूढ़ियों के धागे ।
आगे बढ़ने का यह युग है बढ़ना हमको सबसे प्यारा
।।५।।

सदाचार विचार भित्ति पर हम अभिनव निर्माण करें ।
सिद्धान्तों को अटल निभाते निज पर का कल्याण करें ।
इसी भावना से भिक्षु का 'तुलसी' चमका भाग्य सितारा ।
।।६।।

○ गांधी और गांधी-दर्शन

भारत का भविष्य पश्चिम के उस रक्त-रंजित मार्ग पर नहीं है जिस पर चलते २ पश्चिम अब खुद थक गया है, उसका भविष्य तो सरल धार्मिक जीवन द्वारा प्राप्त शांति के अहिंसक रास्ते पर चलने में ही है। भारत के सामने इस समय अपनी आत्मा को खोने का खतरा उपस्थित है। और यह संभव नहीं है कि अपनी आत्मा को खोकर भी वह जीवित रह सके। इसलिए आलसी की तरह उसे लाचारी प्रकट करते हुए ऐसा नहीं कहना चाहिए कि "पश्चिम की इस बाढ़ से मैं बच नहीं सकता।" अपनी और दुनिया की भलाई के लिए उस बाढ़ को रोकने योग्य शक्तिशाली तो हिन्दुस्तान को बनना ही होगा।

अमर आत्मा

[डा० एस० राधाकृष्णन्]

महापुरुष किसी एक राष्ट्र के नही होते, अपितु सम्पूर्ण मानवता का उन पर समान रूप से अधिकार होता है।

राष्ट्रीय वीर पुरुष एव योद्धाओ की कीर्तिपत्ताका इतिहास मे कुछ समय के लिए फहराती है। वे प्रादेशिक आकाक्षाओ के प्रतीक बनते है और एक वर्ग विशेष की निष्ठाए भी उनमे केन्द्रित हो जाती है, किन्तु उनका प्रभाव शीघ्र ही लुप्त भी हो जाता है। इसके विपरीत सन्तो और ऋषियो का प्रभाव प्रत्येक देश के लोगो पर पड़ता है। उन्ही का अनुकरण कर हम अपने जीवन को पावन बनाने की दिशा मे प्रवृत्त होते है।

गांधीजी ने भारत और विश्व के भाग्य को मिला दिया था। हमारे युग मे वह एक महापुरुष हुए जिन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि दिव्य अग्नि मे प्रदीप्त मानवीय आत्मा सर्वाधिक शक्तिशाली आयुध की अपेक्षा भी अधिक बलशाली सिद्ध होती है।

गांधीजी की दृष्टि मे राजनीति का अर्थ अवसरवादिता अथवा स्वार्थपरता नही था। उनकी आकांक्षा थी कि प्रत्येक व्यक्ति नैतिक सतोगुण मे सम्पन्न बने।

गांधीजी ने यह तो माना की ससार मे बुराई का अस्तित्व है, किन्तु उन्होने किसी को अपना शत्रु न मानते हुए प्रत्येक व्यक्ति को

स्ना बन्धु माना। उनका यह अडिग विश्वास था की सत्य और
न कदापि पराभूत नहीं हो सकते। नरक के द्वार सदा के लिए
ही रहेंगे। विवादों को सुलझाने का उनका ढंग आज विश्व में एक
ति का रूप ग्रहण कर रहा है।

आत्मा की शांति सहिता समार के कोलाहल से दूर मानव
क्षणों में आत्मानुभूति करता है। वह अकेला भले ही हो किन्तु
सके जीवन में निरसता नहीं आ पाती, क्योंकि उसका सम्बन्ध
पने मन की अखण्ड ज्योति से प्रज्जवलित रहता है।

मौन की दृष्टि की प्राप्ति के उन क्षणों में मानव एक उत्थान
ी अनुभूति करता है और उसके जीवन में आध्यात्मिकता की ज्योति
ज्वलित हो उठती है।

जिन धार्मिक आत्माओं को मान्यता मिली है उन्होंने शांति
ी प्रक्रिया का आरम्भ अपने अन्तरतम से ही किया था। अपने
न्द की गहराइयों में उन्होंने शांति का आरोपण किया था और वे
पने सभी कार्यों में इन्हीं भावना से ही प्रेरित होते हैं। समस्त
ल्प उन्हीं विभूतियों में गांधीजी भी सम्मिलित हैं।

द्वारा भाईचारे की भावना जागृत की। इस प्रकार का उदाहरण महात्मा के रूप में उनकी अद्भुत शक्ति का परिचायक था। इसके लिए उन्हें मृत्यु तक को वरण करना पड़ा। लेकिन गांधीजी की मृत्यु में उनके आदर्शों की यह विजय थी।

मेरे विचार में बीसवीं सदी के इस हिंसापूर्ण वातावरण को गांधीजी ने एक गम्भीर चुनौती दी थी और इस सम्बन्ध में उन्होंने जो मौलिक प्रयास किये, उन्हें विश्व व्यापी समर्थन प्राप्त हुआ। अहिंसा के उनके सिद्धांत को मात्र दिवास्वप्न कह देना उचित न होगा। उनका मार्ग सत्य, चरित्र-निर्माण और आत्म नियंत्रण का था। सम्पूर्ण विश्व का उन्हें सम्मान प्राप्त था।

एकादश व्रत

[महात्मा गांधी]

१ सत्य—सत्य ही परमेश्वर है। सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्य वाणी और सत्य कर्म ये सब उसके अंग हैं। जहां सत्य है, वहां शुद्ध ज्ञान है। जहां शुद्ध ज्ञान है, वहां आनन्द ही हो सकता है।

२. अहिंसा—सत्य ही एक परमेश्वर है। उसके साक्षात्कार का एक ही मार्ग, एक ही साधन अहिंसा है। बगैर अहिंसा के सत्य की खोज असम्भव है।

३ ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य का अर्थ है, ब्रह्म की—सत्य की—ओर म चर्या, अर्थात् उससे सम्बन्ध रखने वाला आचार। इस मूल अर्थ में से सर्वेन्द्रिय-संयम का विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेन्द्रिय संयम के अधूरे अर्थ को तो हमें भूल जाना चाहिए।

४. अस्वाद—मनुष्य जब तक जीभ के रसों को न जीते तब तक ब्रह्मचर्य का पालन अति कठिन है। भोजन केवल शरीर-पोषण के लिए हो, स्वाद या भोग के लिए नहीं।

५ अस्तेय (चोरी न करना)—दूसरों की चीज को उसकी इजाजत के बिना लेना तो चोरी है ही लेकिन मनुष्य अपनी कम-से-कम जरूरत के अलावा जो कुछ लेता या संग्रह करता है, वह भी चोरी ही है।

६ अपरिग्रह—सच्चे सुधार की निशानी परिग्रह-वृद्धि नहीं बल्कि विचार और इच्छापूर्वक परिग्रह कम करना उसकी निशानी है। जो-

[स्वीत

सत्य ही प्रभु है

[महात्मा गांधी]

• सत्य को मैं जिस रूप में जानता हूं, उसी रूप में उसका अनुसरण करने और उसका प्रतिनिधित्व करने का मैं प्रयत्न करता हूं। अनेक प्राचीन सत्यों को नये ढंग से समझने और समझाने का दावा मैं जरूर करता हूं।

• किसी विशेष प्रश्न की चर्चा करते समय उस पर पहले लिखी गई या कही गई अपनी बातों के साथ सुसंगत होना मेरा ध्येय नहीं रहता। इसके विपरीत किसी प्रश्न की चर्चा करते समय जिस रूप में मुझे सत्य का दर्शन होता है, उसी के अनुरूप बनना मेरा ध्येय रहता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि मुझे एक सत्य से दूसरे सत्य का दर्शन होता गया है।

• तलवार का त्याग कर देने के बाद मेरे पास प्रेम का प्याला ही रह जाता है, जो मैं अपना विरोध करने वालों को दे सकता हूं। प्रेम का वह प्याला देकर मैं उन्हें अपने पास खींचने की आशा करता हूं।

• सत्य का खोजी यदि यह माने कि केवल वही शुद्ध सम्पूर्ण सत्य को जानता है, तो यह मूलतः गलत होगा। आज संसार के धर्मों की ऐसी बुरी स्थिति हो रही है ? ये प्रतिदिन

इनी कही हुई बात को बदल रहे हैं और ऐसे भी वैज्ञानिक मौजूद है जो स्वयं आइन्स्टीन के अद्यतन सिद्धांत में भी दोष खोज रहे हैं।

• यदि हमें सत्य का पूर्ण दर्शन हो जाता तो फिर हम केवल सत्य-शोधक नहीं रहते, परन्तु ईश्वर के साथ एकरूप हो जाते क्योंकि सत्य ही ईश्वर है ऐसी हमारी भावना है।

• असत्य की हजार गुनी वृद्धि करने से वह सत्य नहीं बन जाता, और न सत्य इस कारण से असत्य हो जाता कि कोई उसे देखता नहीं।

• सत्य ईश्वर की जीती-जागती मूर्ति है। केवल वही जीवन है। मैं पूर्णतम जीवन के साथ सत्य को एकरूप मानता हूं। इसी तरह सत्य साकार रूप धारण करता है। ईश्वर की सम्पूर्ण-सृष्टि, सारा ईश्वर है, और सारी सृष्टि की—सत्य की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।

• जैसे हमारे साधन होंगे वैसा ही हमारा साध्य होगा। साध्य और साधन के बीच दोनों को अलग करने वाली कोई दीवार नहीं है।

• सत्य की सिद्धि ठीक साधनों की सिद्धि के अनुपात में ही होती है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसमें अपवाद की कोई गुन्जाइश ही नहीं।

० साधन बीज है और साध्य वृक्ष है और साधन तथा साध्य के बीच वही अटूट सम्बन्ध है, जो कि बीज और वृक्ष के बीच है।

० अगर सारे भारत में अनुकूल उत्तर मिले और सब लोग एक दिल से असहयोग करें तो मैं दिखा दूंगा कि रक्त की एक बूंद भी गिराये बिना जापानियों के शस्त्रास्त्रों को या किसी भी संगठित शस्त्र बल को बेकार बनाया जा सकता है।

० मैं अहिंसा के द्वारा घृणा के विरुद्ध प्रेम की शक्ति का उपयोग करके लोगों को अपने अपने विचार का बनाकर, धार्मिक समता सम्पादन करूंगा।

० मेरे असहयोग के पीछे सदा छोटे से छोटा बहाना मिलने पर कट्टर से कट्टर विरोधियों के साथ भी सहयोग करने की उत्कट इच्छा रहती है।

० मेरा असहयोग, यद्यपि वह मेरे अहिंसा-धर्म का एक अंग है, सहयोग का आरम्भ है।

० यह बात अक्सर भुला दी जाती है कि सत्याग्रही का इरादा अत्याचारी को परेशान करने का कभी नहीं होता। सत्याग्रही उसके भय को जाग्रत करने का नहीं, परन्तु उसके हृदय को जाग्रत करने का ही सदा प्रयत्न करता है।

• अगर पूरी कोशिश के बावजूद धनी लोग सच्चे अर्थ में गरीबों के संरक्षक नहीं बनते और गरीब अधिकाधिक कुचले जाते हैं

हृदय-परिवर्तन किया जाय कि पीड़ित पक्ष के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग के बिना अन्यायी मनचाहा अन्याय नहीं कर सकता। दोनों ही स्थितियों में अगर लोग अपने ध्येय के लिए कष्ट सहने को तैयार न हों, तो सत्याग्रह के रूप में किसी बाहरी सहायता से उनकी सच्ची मुक्ति नहीं हो सकती।

० हर एक बड़े ध्येय के लिए जूझने वालों की संख्या का महत्व नहीं होता, जिन गुणों से वे बने होते हैं वे ही गुण निर्णायक होते हैं। संसार के महान् पुरुष हमेशा अपने ध्येय पर अकेले ही डटे रहे हैं।

० अशुद्ध साधनों से साध्य भी अशुद्ध हो जाता है। इसलिए राजा का सिर काट लेने से राव और रंक बराबर नहीं हो जायेंगे। मालिक और मजदूर को काटने की इस प्रक्रिया से बराबर नहीं हो जायेंगे। असत्य से हम सत्य को प्राप्त नहीं कर सकते।

० इसलिए केवल सत्यपरायण, अहिंसक और शुद्ध-हृदय समाजवादी ही भारत और संसार में समाजवादी समाज कायम कर सकेंगे।

० मानव श्रम की जो कीमत हम चुकाना चाहते हैं, उसका हिसाब इस आधार पर नहीं लगाना चाहिए कि कोई पदार्थ उत्पन्न किया, उसका तो बाजार में उसके यथा दाम आयेंगे। उसका आधार यह होना चाहिए कि उत्पादन-कर्ता के गुजर के लिए जितने द्रव्य की जरूरत होगी।

की गई है, तो उसमे गुडापन और लूटपाट की सभावना नही होगी। ऐसी हडताल की विशेषता यह होगी कि हडतालियो मे आपस मे पूरा सहयोग रहेगा। हडताल शान्तिपूर्ण होनी चाहिए और उसमे दम-प्रदर्शन नहीं होना चाहिए। हडतालियो को अपनी रोजी कमाने के लिए अकेले या एक-दूसरे के साथ मिलकर कोई काम हाथ मे ले लेना चाहिए। यह पहले से सोच लेना चाहिए कि वह काम किस प्रकार का हो। यह तो मानी हुई बात है कि इस किस्म की शान्तिपूर्ण, कारगर और मजबूत हडताल मे हुल्लड़बाजी या लूटपाट की कोई गुजाइश नहीं होगी।

० आत्मबल सविनय होने के लिए सर्वथा अहिंसक होना चाहिए। क्योंकि इसके पीछे मूल सिद्धात यह है कि कष्ट सहन करके अर्थात् प्रेम से विरोधी को जीता जाय।

० विश्व मे देवता कहलाने वालो की कोई अलग जाति-श्रेणी नही है, परन्तु जो उत्पादन की शक्ति रखते हैं और उसको समाज के हित काम मे लाते है, वे सब देवता है-मजदूर भी और पूंजीपति भी।

० परन्तु याद रखिये, यदि आपको लडाई करनी ही पड़ी तो आपकी प्रतिज्ञापालन की शक्ति आपके जीवन की शुद्धता पर निर्भर रहेगी। कोई जुआरी, शराबी या व्यभिचारी कभी प्रतिज्ञा का पालन नही कर सकता। यह भी स्मरण रहे कि आपको अपने ही बल पर लड़ना पड़ेगा।

० सत्याग्रह लोकमत को शिक्षा देने की एक ऐसी प्रक्रिया है, जो समाज के समस्त तत्वों को प्रभावित करके अन्त मे अजेय बन जाती है। हिंसा से इस प्रक्रिया मे बाधा पड़ती है और सारे समाज की सच्ची क्रान्ति मे विलम्ब होता है।

प्रार्थना

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्ति शान्ति शान्ति. ॥

ईशावास्यम् इदम् सर्वम्
यत् किं च जगत्या जगत् ।
तेन त्यक्तेन भु जीथा (.)
मा गृध कस्यस्विद् धनम् ॥

नाम--माला

ॐ तत्सत् श्रीनारायण तू, पुरुषोत्तम गुरु तू ।
सिद्ध, बुद्ध तू, स्कन्द विनायक, सविता पावक तू ॥
ब्रह्म मज्द तू, यह्व-शक्ति तू, ईशु-पिता प्रभु तू ।
रुद्र–विष्णु तू, राम–कृष्ण तू, रहीम ताओ तू ॥
वासुदेव गो विश्वरूप तू, चिदानन्द हरि तू ।
अद्वितीय तू, अकाल निर्भय, आत्मलिंग शिव तू ॥

एकादश--व्रत

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह ।
शरीरश्रम अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन ॥
सर्वधर्मसमानत्व, स्वदेशी स्पर्शभावना ।
विनम्र व्रतनिष्ठा से, ये एकादश सेव्य हैं ॥

रामनामशुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे,
भणे नरसैयो तेनुं दरसन करतां कुळ एकोतेर तार्या रे।

: २

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी, तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि धर्यो आप शरीर।
हिरनकश्यप मार लीन्हो धर्यो नाहिन धीर।
बूड़ते गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर, दुःख जहां तहां पीर।

: ३

यदि तोर डाक शुने केउ न आसे तबे एकला चलो रे,
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे!
यदि केउ कथा ना कय, ओरे, ओरे ओ अभागा,
यदि सबाई थाके मुख फिराये, सबाई करे भय—
तबे परान खुले
ओ, तुई मुख फुटे तोर मनेर कथा एकला बोलो रे
यदि सबाई फिरे जाय, ओरे ओरे ओ अभागा,
यदि गहन पथे जाबार काले केउ फिरे ना चाय—
तबे पथेर कांटा

कुल हुवल्लाहु अहद्। अल्लाहुस्समद्।
लम् यलिद् वलम् यूलद्;
वलम् यकुल्लहू कुफवन् अहद्॥

जरथोस्ती गाथा

मजदा अत मोइ वहिश्ता
नवा ओस्त्रा श्योथनाचाव ओचा।
ता—तू वहू मनघहा
अशाचा इपुदेव स्तुतो
क्षमा चा श्रश्रा अहूरा फेरषेम्
वस्ना हइ श्येम दाओ अहूम्।

बापू के प्रिय भजन

: १ :

वैष्णव जन तो तेने कहीये जे पीड पराई जाणे रे;
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।
सकल लोकमां सहुने वंदे, निन्दा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले परधन नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ वैराग्य जेना मनमां रे;

ओ तुई रक्त माखा चरन तले एकला दलो रे।
यदि आलो न धरे ओरे ओरे, ओ अभागा—
यदि झड़ बादले आँधार राते दुआर देय धरे—
तबे वज्रानले
आपन बुकेर पाँजर ज्वालिये निये एकला चलो रे
-रवीन्द्रनाथ

राम-सदन

काम क्रोध मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्हके कपट दंभ नहिं माया।
तिन्हके हृदय बसहु रघुराया॥
सबके प्रिय सबके हितकारी।
दुखसुख सरिस प्रसंसा गारी।
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी।
जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाडि गति दूसरि नाही।
राम बसहु तिनके मन माहीं।
जननी सम जानहिं पर नारी।
धन पराव विषतें विष भारी॥
जे हरषहिं परसंपति देखी।
दुखित होहिं पर विपति विसेषी॥

जिन्हहि राम तुम प्रानपियारे ।
तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे ॥
स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम तात ।
मन-मंदिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

('रामचरितमानस' से)

उपनिषद् की भाषा में जीवन की दिशा

ॐ ईशावास्य मिदं सर्वं, यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा., मा गृध कस्य स्विद्धनम् ॥

जगत में जो कुछ जीवन है, वह ईश्वर का बसाया हुआ है । इसलिये उसके नाम से त्याग करके, तू यथाप्राप्त भोगता जा । किसी के भी धन के प्रति कामना न रख ।

[भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा गीता में प्रबोधित स्थितप्रज्ञ-स्थिरबुद्धि कर्म-योगी जीवन का एक आदर्श रेखाचित्र]

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधी किं प्रभाषेत, किमासीत व्रजेत् किम् ॥

अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा—केशव ! समाधि में स्थित स्थिरबुद्धि व्यक्ति का क्या लक्षण है ? वह कैसे बोलता है ? कैसे बैठता है ? कैसे चलता है ?

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः, स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— अर्जुन ! जब व्यक्ति मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट रहता है, तब उसे स्थिरबुद्धि कहते हैं ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमना, सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

दुःखों के आने पर जिसका मन उद्विग्न नहीं होता, सुखों की जिसे कोई स्पृहा नहीं रहती, जिसने राग, भय और क्रोध मिटा दिया है, ऐसा मुनि साधक स्थिरबुद्धि कहा जाता है ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जो सर्वत्र अनभिस्नेह-स्नेहरहित-आसक्तिरहित रहता है, शुभ को प्राप्त कर जो उल्लसित नहीं होता और अशुभ को प्राप्त कर द्वेष नहीं करता, उसकी बुद्धि स्थिर है।

यदा संहरते चायं, कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जैसे कछुआ सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही व्यक्ति जब सब ओर से अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

इन्द्रियों द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले व्यक्ति के केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं पर राग निवृत्त नहीं होता और उक्त व्यक्ति का वो राग भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाता है।

यततो ह्यपि कौन्तेय, पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि, हरन्ति प्रसभं मनः ॥

अर्जुन ! इन्द्रियाँ प्रमथनशील हैं। वे यत्नशील, विद्वान् व्यक्ति के मन को भी बलात् हर लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य, युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

इन्द्रियों को संयमित कर व्यक्ति समाहितचित्त और मत्परायण रहे। जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

प्रसादे सर्व-दुःखाना, हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशुः बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।

आत्म-प्रसन्नता के होने पर उनके सब दुःख मिट जाते है। प्रसन्नचेता व्यक्ति की बुद्धि शीघ्र ही सुस्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य, न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयत· शान्ति-रशान्तस्य कुत सुखम् ।।

जो अयुक्त-योगवर्जित-अस्थिरवृत्ति है, उसमें बुद्धि नही रहती और न उसमे भावना-आस्तिक्य भाव ही रहता है। जिसमें भावना-आस्तिक्य-भाव ही नही, उसे सुख कैसे मिलेगा ?

इन्द्रियाणा हि चरतां, यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञा, वायुर्नावमिवाम्भसि ।।

जैसे हवा, जल मे तैरती नौका को हर लेती है—उ डंल देती है, उसी तरह विषयो में अनुप्रवर्तित इन्द्रियो के बीच जिस इन्द्रिय के साथ मन रहता है, वह एक ही इन्द्रिय उस अयुक्त व्यक्ति की बुद्धि हर लेती है।

तस्माद्यस्य महाबाहो, निगृहीतानि सर्वश· ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।

इसलिए हे महाबाहो ! जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय-विषयों मे प्रवृत्त न होने देकर निगृहीत-प्रतिद्वन्द स्वशासित रखता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

○ चिन्तन के क्षणों में

चौदहवें लुई ने कालबर्ट से कहा—" हम इतने बड़े धन-जनशाली राष्ट्र का शासन करते हैं, पर छोटे से हालैण्ड देश को नहीं जीत सके ।

मंत्री ने नम्रता से उत्तर दिया—"महाराज, किसी देश की महानता उस देश की लम्बाई-चौड़ाई पर अवलम्बित नहीं होती, बल्कि वहां के मनुष्यों के चरित्र पर आश्रित होती है ।

—स्पेंट मार्टेन

सबसे सुन्दर स्वरूप

संयम ?

सम+यम ?

यम के समान ।

यम को तो धर्मराज भी कहते हैं ?

क्यों ?

क्योंकि जीवन का सबसे बड़ा संयम और संरक्षण यम है।

लोग यम को मृत्यु के रूप में देखते है और फिर कहते हैं वह काल जैसा काला है।

मगर मृत्यु का अन्दरूनी आकार श्वेत है।

यह चमत्कार कैसे हुआ ?

संयम द्वारा !

अगर जगत् में मृत्यु न होती तो जीवन का विशाल और विराट् विकास कभी भी न हो सकता। क्योंकि मृत्यु ही जीवन की गति को ठीक करके रखती है और साथ ही उस गति को वेग भी देती है।

इसलिये ही तो यमराज को धर्मराज कहते हैं। मृत्यु के केवल बार-बार स्मरण से ही मनुष्य मोह-माया के जाल और जग के जंजाल में फसने से बच जाता है।

क्यों ?

क्योंकि इस किस्म के स्मरण से हमें अपनी अनेक काम-नाओं पर संयम रखने की प्रेरणा मिलती है।

यदि संक्षिप्त में कहा जाय तो संयम प्रभु का सबसे सुन्दर स्वरूप है।

—आचार्य गुरदयाल मल्लिक

आलोक से प्रकाशमान

आकाश !

प्रभात का यह आज
शिशिर से पूर्ण है,
नदी के तट पर
सभी झाऊ वृक्ष

धूप से हैं देदीप्यमान ।
ऐसी ही निबडता के साथ
ये लोग खडे हो जाते है

मेरे हृदय भर कर खडे हो जाते है दिल पर मेरे ।
तभी तो मैं जानता हूँ
विपुल विश्व भुवन आज
तटहीन मानस सागर के जल मे

कमल के समान कंपित है ।
तभी तो मै जानता हूँ—
मै वाणी के साथ वाणी हूँ,
मै गीत के साथ गीत हूँ
मै प्राण के साथ प्राण हूँ,
मै चमत्कार के हृदय में
हीरे के समान
आलोक से प्रकाशमान हूँ ।

किस चोट से टूटा है ?

एक वार एक अमेरिकन विद्वान् का लडका शराब पीने के लिये मचलने लगा। अमेरिका मे बूढे, जवान, बच्चे सभी शराब पीते हैं। माता वालक को जरा-सी शराब देने लगी। परन्तु पिता ने ऐसा न करने दिया। वालक वडे जोर-जोर से रो रहा था। मा ने कहा—आज "इसे थोडी सी शराब पी लेने दो, कल से कदापि न दूगी।" इस पर पिता एक पत्थर और एक हथौडा लाया और हथौडे से पत्थर पर चोट जमाने लगा। २५ वार चोट जमाने के वाद पत्थर के कई टुकडे हो गये। पिता ने पूछा—"तुम वता सकती हो किस चोट से पत्थर टूटा है।" माता ने कहा— "टूटा तो २५ वीं चोट से है किन्तु इस टूटने में सभी वार की चोटें शामिल है।" पिता ने हंस कर उत्तर दिया—"ठीक इसी प्रकार वालको की आदत विगडती है। उनके पत्थर रूपी चरित्र पर अगर वुरी आदतो के हथौडे पडने लगे तो यह तो अवश्य है कि आरम्भ की चोटो पर लोगो का कम ध्यान जायेगा। परन्तु यही चोटें उसे इतना कमजोर कर देंगी कि उसे अन्तिम चोट से ऊपर कहे गये पत्थर की भांति टूटना ही पड़ेगा।"

परिस्थिति

दिये पर जैसे चिमनी उसके प्रकाश को रोकती नही है, बाहर की ओर जाने मे सहायक होती है और भीतर दीपक को सुरक्षित रखती है, परिस्थिति योगी पुरुष के सम्बन्ध मे वैसा ही रूप पा जाती है। अर्थात् वह उसे बन्द नही करती, बल्कि स्वस्थ और प्रकाशित करती है। कामना से ग्रस्त कामी पुरुष उस परिस्थिति की मर्यादा से हठात् टकराते रह कर उसे जड और जकड बना देकर उसे सामयिक नही बना पाता। भोग और योग वृत्ति का यह अन्तर मौलिक है और उसे पहिचानने में कठिनाई नही होनी चाहिए।

—जैनेन्द्र

बाहर की हवा

मैने फुटबाल से पूछा—क्या कारण है कि तुम जितने 'लात पे लात' लेती हो, वही तुम्हारे सिर पर उतनी ठोकर लगाता है ?

फुटबाल ने उत्तर दिया—क्योंकि मेरे पेट में बाहर की हवा भरी है।

—स्वामी रामतीर्थ

देखो क्या होता है ?

दुनिया के सब उद्योगों में सत्य व्यवहार की सबसे पहली आवश्यकता है। आश्चर्य का विषय है कि जिस सत्य को लोग सदैव आदर की दृष्टि से देखते हैं वही व्यवसाय में अनादर की दृष्टि से देखा जाता है। लोगों को विश्वास-सा हो गया है कि व्यापार में बिना झूठ के काम नहीं चल सकता। इतना ही क्यों, जो जितना अधिक झूठ बोलता है और लोगों के साथ छल-कपट करता है वह उतना ही चतुर समझा जाता है। नैतिक अध पतन का इससे बढ़कर नमूना और क्या होगा! यह व्यक्ति-विशेष की नीचता ही नहीं, परन्तु जाति और राष्ट्र-भर की है। सच पूछो तो ऐसा करने से मनुष्य की उन्नति कभी नहीं हो सकती। असत्य व्यवहार में एक-बार लोग धोखा भले ही खा जाय, परन्तु जल्दी ही उसकी सारी कलई खुल जाती है। लोग बहुधा डरते हैं कि सच बोलने से उनकी गुजर न होगी। निस्सन्देह जब तक लोगों में तुम्हारी साख न जमेगी तब तक तुम्हें अधिक लाभ नहीं हो सकता। परन्तु एक-बार विश्वास जमने पर देखो क्या होता है?

—सर आर्थर हेल्प्स

दयनीय बनने के नुस्खे

पादरी हेगम्सील ने एक जगह लिखा है—'मनुष्य यदि चाहे तो बहुत सरलता से "दयनीय स्थिति" को पहुँच सकता है। फिर वह शब्दों में हेगम्सील लिखता है—'दयनीय बनने के लिए निम्नांकित कुछ अचूक नुस्खे :

अपने बारे में ही बोलिए;

"मैं" शब्द का अधिक से अधिक प्रयोग कीजिये,

दूसरों को जीभर कर उपदेश दीजिये,

दूसरों से प्रशंसा मांगिए;

अपने लिए ऐश्वर्यपूर्ण दिनों की कामना करते रहिये

अपने कर्तव्य कर्म से काम निकालिये;

दूसरों के प्रति, जितना संभव हो, अनुदार बनिये;

अपने आपसे बेहद प्यार कीजिये,

स्वार्थी बनिये।'

ज़रा सोचिये, क्या आप भी दयनीय स्थिति में जी रहे हैं?

पूर्णिया श्रावक

पूर्णिया श्रावक को अपने जीवन में अनेक बार सपत्नीक भूखा रहना पड़ा ! वे अभावग्रस्त रह सकते थे, परन्तु अपनी मानसिक शांति किसी भी शर्त पर खोने को तैयार न थे। जब तक वे अपने अतिथि को भोजन न करा देते, स्वयं न करते थे।

एक दिन सुबह के समय पूर्णिया स्वाध्याय में रत थे। पर बीच-बीच में स्वाध्याय का क्रम टूट जाता, मन उचट जाता, और विचार की शृंखला टूट जाती। नये सिरे से फिर पढ़ना शुरु करते। प्रयास करने पर भी मन में स्थिरता नहीं आ रही थी। स्वाध्याय का निर्धारित समय पूरा हो गया और वे अपने आसन से उठ बैठे। उनकी पत्नी ने उनके चेहरे पर ऐसा उतार-चढ़ाव कभी नहीं देखा था, पूछ बैठी—'आज क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं ?'

'शरीर तो ठीक है, पर मन की अस्वस्थता ने एकाग्रता आने ही नहीं दी। मानसिक घबराहट का कारण जानते हुए भी मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या बात है। आज अपने घर में अनीति से अर्जित कोई वस्तु तो नहीं आ गयी ? क्योंकि भोजन के अनुसार ही मन के संस्कार बनते-बिगड़ते रहते हैं।'

पत्नी को एक बात याद आयी और दूसरे ही क्षण बोली-'क्षमा कीजिये आज भूल हो गयी। मैं पड़ोसी के यहां चूल्हा जलाने के लिए आग लेने गयी थी। कण्डा अपने साथ ले

नही गयी थी । उसी के कडे पर आग ले आयी थी और जल्दी मे लौटाना भूल गयी ।'

पैने दो-पैसे की चीज ने पूणिया के विचारो मे कैसा गनि-रोध पैदा कर दिया था । उन्हे अपनी मानसिक अस्वस्थता का कारण मालूम हो गया । उन्होने एक कंडा पड़ोसी के यहा वापस भेज दिया ।

-डॉ० गोपालप्रसाद 'वंशी'

प्रवेश-पत्र

स्वर्ग के प्रतीक्षालय मे बैठे-बैठे सांझ हो गयी । 'परि-चय-पत्र'! वह तो कितनी देर पहले ही भेजा जा चुका था। अब तो प्रतिपल इन्तजार हो रहा था कि मेरा किन्तु ? अन्त मे दरबान आया और उसने कहा—

"श्रीमान् ! आप ऊंचे कुल-जाति के है, शास्त्र ज्ञान भी आपको प्राप्त है, धन संपत्ति भी आपके पास बहुत है - राजसत्ता भी है—सो सब ठीक है, पर धर्मराज ने कहा है कि इतने परिग्रह के भाव के साथ आप स्वर्ग मे दाखिल नहीं हो सकते । यहा तो मनुष्य 'शून्य' भाव मे ही प्रवेश पा सकता है ।"

मैं तुम्हें तैयार मिलूंगा !

गुरुदेव (विश्वकवि रवीन्द्र) पुस्तकालय में काम कर रहे थे। एकाएक एक अपरिचित व्यक्ति सामने आ खड़ा हुआ और बोला—

मैं तुम्हारा वध करने आया हूँ।'

'तो करो ! परन्तु तुम आये बड़े कुसमय।

'मैं तुम्हारा वध अवश्य करूंगा। मैं आज ही तुम्हारा अन्त करने के लिए बाध्य हूँ। और मुझे अपना काम करना ही होगा।'

'यह तो बड़ी असुविधा की बात है। मुझे अभी बहुत पत्र लिखने हैं। मैं बहुत व्यस्त हूँ फिर आजाना, मैं तुम्हें तैयार मिलूंगा।

गुरुदेव बराबर अपने पत्रों की लिखा-पढ़ी करते रहे। हत्यारा इस दृढ़, अचल बुड्ढे का धैर्य और आत्म-संयम देख सन्नाटे में आ गया और अप्रतिभ हो खिसक गया।

आत्म ज्ञान होने पर—

एक भेड को मार्ग मे एक अनाथ सिंह—शावक मिल गया। उसका मातृ—वात्सल्य उमडा। अपने बच्चो के साथ उसे भी वह दूध पिलाने लगी। सिंह शावक बडा हुआ, किन्तु सिंह के व्यक्तित्व मे नही, भेड के व्यक्तित्व मे। भेडो की तरह वह भी घास चरता और जगली जानवरो को देख कर सभीत भागता। एक दिन सिंह ने भेडों पर छापा मारा भेडो के साथ सिंह शावक भी भागा। भागते-भागते जब वे एक जलाशय के पास पहुँचे तो शावक ने पानी मे अपना प्रतिबिम्ब देखा-ऐं मै भी सिंह? तत्काल एक वन-प्रान्तर प्रकम्पिनी गर्जना उसके कण्ठ मे फूट पडी।

आत्म-ज्ञान होने पर व्यक्ति भी अपने भीतर के विराट् को इसी प्रकार पा जाता है।

—महर्षि रमण

○ बिन्दु-बिन्दु विचार

बढ़े चलो,

पुरानी दुनिया के गुजरते हुए ख्याल के आदर्शों को छोड़ कर

बढ़े चलो,

रुको मत, मुड़ो मत,

अतीत की मरी हुई आवाजों को सुनने के लिए रुको मत

बढ़े चलो, बढ़े चलो,

—रोमां रोलाँ

0 वही काम करना ठीक है जिसे करके पछताना न पड़े और जिसके फल को प्रसन्न मन से भोग सकें।

—भगवान बुद्ध

0 संस्कृति के नैतिक विकास का सबसे ऊंचा स्तर तब आता है जब हम अपने विचारों को नियंत्रित करना सीख लें।

—चार्ल्स डार्विन

0 भय से ही दुःख आते हैं और भय से ही मृत्यु होती है और भय से ही बुराइयां उत्पन्न होती हैं। इसलिए भय को त्याग देना चाहिये।

—स्वामी विवेकानन्द

0 सच्चे सुख की इमारत के लिये सच्चाई और भलाई की नींव आवश्यक है।

—कोलरिज

0 हमारा विवाह—सम्बन्ध संयम सिखलाता है, जो संयम से न रह सकें उन्हें इस पवित्र बन्धन को दूषित करने का कोई अधिकार नहीं है।

—अज्ञात

0 गुणों से ही मनुष्य ऊंचा होता है, ऊंचे आसन पर बैठने से नहीं। महल के ऊंचे शिखर पर बैठने से भी कौवा गरुड़ नहीं हो सकता।

—चाणक्य

0 पण्डित! दूसरे को गतिशील देख ईर्ष्या मत कर। तेरी ईर्ष्या उसकी गति को कुण्ठित नहीं कर सकेगी। उससे तो तेरी ही हानि

चलना चाहिये। जितना लाभ हम दूसरों को अपने सच्चे उदाहरण द्वारा पहुंचा सकते हैं, वह हजार कोरे उपदेश और वक्तृताएं नहीं पहुंचा सकतीं।

—स्वामी कृष्णानन्द

0 समाज परिवर्तनशील है, पुरानी बातें अनुपयोगी हो जाती हैं। उनका असली मतलब हम भूल जाते हैं या उनका स्वरूप बदल जाता है। उनका ठाठ तो बना रहता है, परन्तु प्राण निकल जाता है। जो नीतियां या प्रथाएं अनावश्यक हैं, उन्हें दूर करना ही होगा।

—प्लेटो

0 इतिहास की समग्र प्रक्रिया का यही अर्थ है कि प्रभु मानव रूप में अवतरित होता रहता है ताकि मानव किसी दिन प्रभु रूप में अपनी वास्तविक सत्ता में अवस्थित हो सके।

—व्लादिमीर सोलोवीफ

0 पीड़ा और वेदना-रहित प्रेम हो नहीं सकता। अतः यदि हम यह मानें कि प्रभु को पीड़ा और वेदना नहीं हो सकती, मात्र हमारी भ्रान्त कल्पना है, तो हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि ऐसी स्थिति में प्रभु का प्रेम भी इसी प्रकार एक झूठी कल्पना या आभास है।

—सर्वपल्ली राधाकृष्णन

0 भारतीय संस्कृति कहती है कि विजय के नगाड़े मत बजाओ और पराजय का रोना मत रोओ। तुम दोनों के ऊपर सवार होकर

0 महावीर इसलिये महावीर थे कि उनके पराक्रम की साप सदा प्रज्वलित रहती थी। उनकी क्रांति का स्वर था "बुझो मत, बुझना पाप है। जलो और इस प्रकार जलो कि तुम्हारे जलने से घोर अमा पूनम की रात बन जाय और आसपास की कालिमा भी धुल जाय।" उन्होंने स्वय को जलाया और तब तक जलाया, जब तक वे प्रकाश-पुंज नही बन गये। उन्होंने पहले पद मे कहा—"अहिंसा धर्म है" तो दूसरे पद मे कहा—"कष्ट सहना धर्म है।" जो कष्ट सहना नही जानता, उसकी अहिंसा कायरता मे बदल जाती है और जो अहिंसा को नही जानता, उसका कष्ट सहना उन्माद मे बदल जाता है। कायरता भी पाप है और उन्माद भी पाप है। महावीर को ये दोनो प्रिय नही थे।

—मुनि नथमल

0 आवश्यक कार्य के लिये जितनी शक्ति पर्याप्त होती है, उत्साह के लिये उससे अधिक शक्ति चाहिये और इनके लिये आवश्यक है कि मन शांत भाव से काम करता रहे।

—बट्रेंन रसेल

0 सुख और आनन्द ऐसे इत्र हैं, जिन्हें जितना अधिक आप दूसरो पर छिडकेंगे, उतनी ही अधिक सुगध आपके अन्दर आयेगी।

—एमरसन

0 नदी का यह किनारा आह भर कर कहता है, सामने के किनारे पर ही सारे सुख हैं, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं।" सामने का किनारा पहले वाले से भी गहरी आह भर कर कहता है, 'जगत मे जितना सुख है वह तमाम पहले ही किनारे पर है।'

—टैगोर

[इर्षिरि

नामकरण—संस्कार

आवश्यक निर्देश

१. शिशु का सही जन्म—समय लिखित रूप से रखा जाए।

२. नामकरण-संस्कार का दिन और समय अपनी सुविधानुसार या ज्योतिष के आधार पर निश्चित किया जाए।

३. नामकरण के समय अपने निकट सम्बन्धियों, परिचितों तथा इष्ट मित्रों को आमन्त्रित किया जा सकता है।

नामकरण—विधि

१. घर के उचित स्थान पर उत्सव के लिए उपासना का प्रबन्ध किया जाए। उसके निकट ही संस्कारक (संस्कार कराने वाले) का आसन हो।

२. स्नानादि के पश्चात् जच्चा को शिशु के साथ पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बिठाया जाए।

३. संस्कारक के समक्ष कुंकुम, मौली, दूब, पत्ते और पानी, चावल, जल से भरा लघु कलश, मिश्री आदि प्रसाद सामग्री व शुभ थाल का प्रबन्ध किया जाए।

४. संस्कार-विधि का प्रारम्भ कल्याणों का अभिनन्दन करके मंगल-ध्वनि से किया जाए।

मंगलगीत-परमेष्ठी वंदना

सहज निज आलोक से भासित स्वयं संबुद्ध हैं ।
धर्म तीर्थंकर शुभंकर वीतराग विशुद्ध हैं ॥
गति-प्रतिष्ठा-त्राणदाता, आवरण से मुक्त हैं ।
देव अर्हन् दिव्य-योगज-अतिशयों से युक्त हैं ।

वन्दना आनन्द-पुलकित विनयनत हो मैं करूँ ।
एकलय हो एकरस हो भाव-तन्मयता वरूँ ।

बन्धनों की शृंखला से मुक्त, शक्ति-स्रोत हैं ।
सहज निर्मल, आत्मलय में सतत ओत-प्रोत हैं ।
दग्ध कर भव बीज अंकुर अरुज अज अविकार हैं ।
सिद्ध परमात्मा परम ईश्वर अपुनरवतार हैं ॥

वन्दना आनन्द-पुलकित विनयनत हो मैं करूँ ।
एकलय हो एकरस हो भाव-तन्मयता वरूँ ॥

अमलतम आचार-धारा में स्वयं निष्णात हैं ।
दीप सम शत दीप दीपन के लिए प्रख्यात हैं ॥
धर्मशासन के धुरन्धर धीर धर्माचार्य हैं ।
प्रथमपद के प्रवर प्रतिनिधि प्रगति में अनिवार्य हैं ॥

वन्दना आनन्द-पुलकित विनयनत हो मैं करूँ ।
एकलय हो एकरस हो भाव-तन्मयता वरूँ ॥

(च) ॐ ह्रीं श्रीं ग्रहाश्चन्द्र-सूर्यांगारक-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनैश्चर-राहुकेतु-सहिताः खेटा जिनपतिपुरतोऽवतिष्ठन्तु मम धन-धान्य-जय विजय-सुख-सौभाग्य-धृति-कीर्ति-शान्ति-तुष्टि-पुष्टि-वृद्धि लक्ष्मी-धर्मार्थ-कामदाः स्युः स्वाहा।

(छ) नाणेण दंसणेण य, चरित्तेण तवेण य।
खंतीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य॥

७ संस्कार-विधि के पश्चात् पीहर पक्ष की तरफ से जच्चा को साड़ी, ओढ़ना आदि ओढ़ाया जाए।

८ संस्कारक ज्योतिष या अपने विश्वास के आधार पर शिशु का संस्कृतिपरक नाम घोषित करे।

९ निर्दिष्ट मंगलगीतों से कार्य-क्रम सम्पन्न किया जाए।

विवाह संस्कार

आवश्यक निर्देश—

१. पुत्र या पुत्री का सम्बन्ध किसी प्रकार के प्रलोभन या दबाव से न करके उसकी योग्यता तथा इच्छा को ध्यान में रखकर किया जाए।

२. सगाई या विवाह के प्रसंग पर किसी प्रकार के लेने का ठहराव नहीं किया जाए।

३. सगाई की रस्म [साता सुपारी] एवं वधू की खोल भरने में सादगी का परिचय दिया जाए।

सगाई होने के पश्चात् विवाह-संस्कार के पूर्व वधू पक्ष वाले यदि वर पक्ष वालों को मिठाई आदि देना चाहें तो कुल ग्यारह किलो से अधिक न दें।

विवाह-दिवस की स्थापना

विवाह-दिवस की स्थापना सात दिन पहले तक की जा सकती है। इस अवसर पर वर तथा वधू पक्ष वाले अपने-अपने पारिवारिक जनों को एकत्रित कर उनके बीच निर्दिष्ट विधि से घोषणा करें।

विधि

(क) जिसका विवाह होने वाला हो उसे पट्ट पर बीच उच्चासन पर बिठाया जाए।

(ख) अभिमंत्रित नमस्कार महामंत्र, मंगल पाठ के पश्चात् घोषणा करें—'मुझे आप स्वजनों के बीच घोषणा करते हुए हर्ष होता है कि चिरंजीव/सौ० ...... पुत्र/पुत्री ...... का शुभविवाह आगामी तिथि ...... सम्वत् ...... वार ...... तदनुसार तारीख ...... को ...... निवासी श्रीमान् ...... के पुत्र/पुत्री ...... के साथ होना निश्चित हुआ है। इसमें चिरंजीव/सौ० ...... की पूर्ण स्वीकृति है।

(ग) वर पक्ष तथा वधू पक्ष द्वारा एक ही दिन विवाह की घोषणा होनी चाहिए।

बत्तीसी

जिसका विवाह होता है उसकी माता अपने पीहर वालों को विवाह में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण करने जाए तो अपने साथ तिलक कुंकुम, रोली तथा चावल ले जाए। मिठाई साथ लिये बिना भी जाया जा सकता है। पीहर वालों को तिलक करके विवाह में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित करे।

मायरा

(क) मायरे में भाई द्वारा बहनोई, भानजा और भानजी के अतिरिक्त और किसी के लिए वेश-पोशाक, पगड़ी आदि न दी जाए।

(ख) मायरे में जो कुछ भी दिया जाये उसका दिखावा या किसी भी रूप में प्रदर्शन नहीं होना चाहिए।

(क) विवाह के दिन वर-वधू को अपनी सुविधानुसार वस्त्र धारण कराए जाएं।

(ख) वर नमस्कार महामंत्र, मंगल पाठ का स्मरण तथा पूज्य-जनों को नमस्कार करके अपने निकट सम्बन्धियों के साथ वधू के घर को प्रस्थान करे।

(ग) वर की निकासी के समय सादगी का विशेष ध्यान रखा जाए। आतिशबाजी तथा नृत्य आदि न किए जावें।

(घ) दोनों पक्षों के अभिभावकों द्वारा अपने-अपने परिजनों तथा इष्ट मित्रों को कन्या-गृह में निर्दिष्ट समय पर उपस्थित होने का निमन्त्रण दिया जाए।

(ङ) वधू पक्ष वालों द्वारा समागत व्यक्तियों के स्वागतार्थ दूध, चाय आदि पेय पदार्थ तथा अल्पाहार की व्यवस्था की जा सकती है।

(च) वर के आगमन पर वधू की माता द्वारा [illegible] में तिलक लगाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की [illegible] नहीं किया जाए।

(छ) विवाह-मण्डप में वर-वधू को [illegible] विठाया जाए। कन्या वर के बायीं ओर बैठे।

(ज) [illegible]

(झ) [illegible]

मंगल सूत्र

(क) नमस्कार महामन्त्र

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अर्हद्भ्यो नमो नमः

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सिद्धेभ्यो नमो नमः

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं आचार्येभ्यो नमो नमः

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं उपाध्यायेभ्यो नमो नमः

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं गौतमस्वामिप्रमुखसर्वसाधुभ्यो नमो नमः

एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पाव प्पणासणो।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

(ख) मंगल पाठ

अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,

साहू मंगलं, केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,

साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

अरहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि,

साहू सरणं पवज्जामि, केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि॥

(ग) अर्हन्तं स्थापयेन्मूर्ध्नि, सिद्धं चक्षुर्ललाटके।

आचार्यं श्रोत्रयोर्मध्ये उपाध्यायं तु नासिके॥

श्री कुन्थुगुल्फक रक्षेद् अरो लोमकटीतटम् ।
मल्लिरूपृष्ठमश पिडिका मुनिगुव्रत: ॥

पादागुलीनैमी रक्षेद् श्रीनेमिश्चरणद्वयम् ।
श्री पार्श्वनाथ सर्वांग वर्धमानश्चिदात्मकम् ॥

पृथिवी—जल—तेजस्क—वाय्वाकाशमय जगत् ।
रक्षेदशेषपापेभ्यो वीतरागो निरजन· ॥

मगल भगवान् वीरो मगल गौतम; प्रभु. ।
मगल स्थूलभद्राद्या जैनधर्मोस्तु मगलम् ॥

विवाह–संस्कार–विधि

(क) वर का अभिभावक खडा होकर प्रस्ताव करे—मैं आप श्रीमान् की सुशील कन्या सौभाग्यवती को अपने पुत्र की जीवनसगिनी बनाने का प्रस्ताव करता हूँ ।

(ख) कन्या का अभिभावक स्वीकृति दे—मैं अपनी कन्या सौभाग्यवती ···· को मेरी तथा मेरी पत्नी और पुत्री की इच्छा के अनुसार आज तिथि सवत् · तदनुसार तारीख के दिन/ रात्रि मे ··· बजे यहां स्थान में अपने परिजनों की साक्षी मे आप श्रीमान् पुत्र श्री ·· निवासी की जीवनसगिनी बनाने की स्वीकृति देता हूँ ।

४— हम दोनों एक-दूसरे का पूर्ण विश्वास करेंगे।

५— हम दोनों एक-दूसरे के परिजनों की यथाशक्य सेवा करेंगे।

६— हम व्यसन-मुक्त रहने का प्रयास करेंगे।

७— हम एक-दूसरे के धार्मिक विश्वास में व्याघात नहीं करेंगे।

इन प्रतिज्ञाओं के अनुसार आज से हम दोनों एक-दूसरे को अपना जीवन अर्पित करते हैं।

इसके पश्चात् वर-वधू परस्पर माल्यार्पण या मुद्रिका-परिवर्तन करें। संस्कारक दोनों का पाणिग्रहण (हथलेवा) कराए। इस समय वर-वधू समवेत स्वर में बोलें—"हम दोनों परिजन-वर्ग की साक्षी से एक सूत्र में बन्धे हैं, अतः इस सम्बन्ध को आजीवन निभाएंगे।"

तत्पश्चात् वर-वधू अपना स्थान परिवर्तन करें। वर-वधू के बायीं ओर बैठे।

संस्कारक द्वारा आशीर्वाद

तुष्टिरस्तु ! पुष्टिरस्तु ! वृद्धिरस्तु ! कल्याणमस्तु ! अविघ्नमस्तु ! आयुष्यमस्तु ! आरोग्यमस्तु ! धर्मसिद्धिरस्तु ! इष्टसम्पत्तिरस्तु ! पापानि शाम्यन्तु ! पुण्यं वर्धताम् ! श्री: वर्धताम् ! कुलगोत्रं चाभिवर्धताम् ! स्वस्ति भद्रं चास्तु !

संस्कारक के आशीर्वाद के पश्चात् स्वजनों, अभिभावक तथा अन्य समागत व्यक्तियों का अभिवादन करके सबसे आशीर्वाद प्राप्त करें।

विदाई

निर्दिष्ट मर्यादाओं से संस्कार सम्पन्न किया जाए।

वर-वधू की विदाई उस समय या दूसरे दिन सुविधानुसार दी जा सकती है। वधू का पिता अपनी पुत्री को जो कुछ भी दे उसका पक्षों की ओर से प्रदर्शन न किया जाए।

व्यय

बारात एक समय से अधिक न ठहरे। यातायात की सुविधा न हो तो दो समय भी ठहर सकती है।

बारात में आने-जाने का खर्च एवं मार्गवर्ती भोजन-व्यवस्था आदि की जिम्मेदारी वर पक्ष वाले की रहे।

शादी या बारात में नशीले पदार्थों की मनुहार न की जाए।

वर पक्ष वालों की ओर से किसी प्रकार की हाती आदि न बांटी जाए।

सगाई या विवाह के समय में किसी प्रकार की अर्थहीन रूढ़ियों को प्रश्रय न दिया जाए।

९. (१) चैत्र शुक्ला १३ महावीर जयन्ती, (२) वैशाख शुक्ला ३ अक्षय तृतीया, (३) ज्येष्ठ कृष्णा १३ शांतिनाथ जयन्ती, (४) आषाढ़ शुक्ला ८ नेमिनाथ निर्वाण दिवस, (५) मार्गशीर्ष कृष्णा १० महावीर दीक्षा कल्याण दिवस, (६) पोष कृष्णा १० पार्श्व जयन्ती, (७) माघ शुक्ला ५ बसन्त पञ्चमी आदि ऐसे पर्व दिन हैं जो सहज मान्य हैं। अतः इन दिनों में विवाह आदि कार्य अमर्यादित रूप से संपन्न किए जा सकते हैं।

विवाह-संस्कार का कार्यक्रम सुविधानुसार दिन में भी सम्पन्न किया जा सकता है।

मृत्यु संस्कार

१- प्राणान्त के पश्चात् एक मुहूर्त तक मृतक को स्थानांतरित न किया जाए।

२- मृतक के आस-पास का वातावरण अध्यात्ममय हो, इसका विशेष लक्ष्य रखा जाए। अध्यात्ममय वातावरण की विधाएं हैं:-

(क) ध्यान

(ख) उपसर्गहरण का जाप

(ग) मंगल ध्वनि [ॐ णमो अरिहंताणं]

(घ) वैराग्यवर्धक गीतिकाएं या पद्य

३- मृतक की शरीर-शुद्धि के पश्चात् उसे नूतन वस्त्र धारण कराये जाएं।

४- मृतक के पेट पर आटे का पिण्ड और पैसा न रखा जाए।

५- मृतक को उठाते समय प्रथा रूप से शोक न किया जाए और न प्रथा रूप से रोया जाए।

६- अर्थी ले जाते समय रास्ते में घोष के लिए कुछ प्रकार हैं—

(क) अरिहंत नाम सत्य है, भगवन्त नाम सत्य है।

(ख) सांचो है अरिहंत नाम, आगे ओ ही आसी काम।

(ग) अरिहंता री सा साखी। अमर नहीं कोई प्राणी।

(घ) मंगल ध्वनि . . .. (ॐ नमो अरिहंताणं)

१४- मृतक के पीछे किसी प्रकार का भोज न किया जाए और हाँसे न बाँटी जाए।

१५- शोक-बैठक और पोतिया, चद्दर आदि शोक चिह्नों को सात दिनों से अधिक न रखा जाए।

१६- शोक-सपन्नता के समय आध्यात्मिक अनुष्ठान किए जाएं। जैसे —

(क) परमेष्ठी वन्दना

(ख) अर्हत् वन्दना

(ग) शान्त सुधारस की गीतिकाएं — १ से ४

(घ) मृतक के गुणों की स्मृति

(ङ) ध्यान

१७- विधवा के साथ किसी प्रकार की उपेक्षा या तिरस्कारपूर्ण व्यवहार न किया जाए।

मृतक के सम्बन्ध में परिवार वालों की ओर से जो पत्र दिए जाते हैं उनमें भी विविधताएं होती है। एकरूपता की दृष्टि से उसका एक प्रारूप यहां प्रस्तुत किया जाता है। इसका उपयोग पत्र के रूप में अपनी पारिवारिक अनुकूलता के अनुसार किया जा सकता है :—

दीपावली पर्व

दीपावली भारत का आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पर्व है। इस पर्व के साथ विभिन्न संस्कृतियों एवं महापुरुषों के जीवन की महत्त्व-पूर्ण स्मृतियों का ऐसा सम्मिश्रण हो गया है कि उनमें किसी एक को अलग करना कठिन है। अलग करना आज आवश्यक भी नहीं है क्योंकि, ऐसे पर्वों के सम्यग् आयोजन से ही भावात्मक एकता का निर्माण होता है। इसके विकास में जैनेतर धर्मावलम्बियों का जैसा योग है वैसा ही जैन धर्मावलम्बियों का भी योगदान है। प्राचीन साहित्य के उल्लेखानुसार दीपावली का एकसम्बन्ध युग पुरुष महावीर के निर्वाण से है। महावीर इस युग के अन्तिम तीर्थंकर थे। उनके निर्वाण के साथ ही संपूर्ण विश्व से एक दिव्य ज्योति विलीन हो गई। उस स्मृति के प्रतीक स्वरूप जनता ने दीप ज्योति कर अमावस्या में बाह्य अन्धकार को मिटाने का प्रयत्न किया। उस दिव्य ज्योति पुञ्ज की स्मृति में केवल बाह्य दीपों को प्रज्वलित कर ही सन्तुष्ट नहीं होना है। उसके लिए आन्तरिक ज्योति का जागरण भी आवश्यक है।

परम अहिंसक प्रभु महावीर के निर्वाण की स्मृति स्वरूप सामा-यिक ध्यान, जप आदि तो करने ही चाहिए, साथ ही दीपावली के अवसर पर पूजा के समय सर्व प्रथम भगवान महावीर की जय मनाना तथा अन्त में, नये का प्रारम्भ करते समय सम्पत्ति पत्र स्वच्छ वातावरण हो तो अपने परिवार में महापुरुषों की पावन स्मृति में

ॐ ह्रीं श्री महाचन्द्र-सूर्याङ्गारक-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनैश्चर-राहुकेतु सहिता सदा जिनपति पुरतोऽवतिष्ठन्तु मम धन-धान्य-जय-विजय-सुख-सौभाग्य-धृति--कीर्ति--शान्ति--तुष्टि--पुष्टि--बुद्धि--लक्ष्मी धर्मार्थ कामदा स्तु स्वाहा।

इसके बाद वहीं से मुख पृष्ठ पर निम्नांकित शब्द सम्पदा लिखी जाए —

श्री

श्री श्री

श्री श्री श्री

श्री श्री श्री श्री

श्री श्री श्री श्री श्री

णमो समणस्स भगवओ महावीरस्स

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं ॥

एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पाव पणासणो।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं ॥

अ	ग	गि
म	आ	म
उ	प	गा

ज्ञान दर्शन

चारित्र तप

अ	ए	गि
स	आ	ग
उ	प	गा

१	१४	४	१५
८	११	५	१०
१३	२	१६	३
१२	७	९	६
ॐ	ह्रीं	श्री	क्लीं

महावीर स्तुति

—आचार्य श्री तुलसी

जय महावीर भगवान
मन-मंदिर में आओ धरूं निरंतर ध्यान

॥ ॐ ॥

१– पावन नाम तुम्हारा, मन्त्राक्षर प्यारा। प्रभु ...
मेरी स्वर-लहरी पर, उठे एक ही तान॥
जय महावीर भगवान ...

२– राग द्वेष विजेता, सिद्धि-सदन नेता। प्रभु
क्षमामूर्ति जगत्राता, मिटे सकल व्यवधान॥
जय महावीर भगवान ...

३– अनेकांत उद्‌गाता, अनुपम सुखदाता। प्रभु
जनम-जनम के बन्धन, तोड़ें कर सधान॥
जय महावीर भगवान ....

४– आधि-व्याधि की माया मिटे प्रेत छाया। प्रभु
आत्म-शक्ति जग जाए, लघु भी बने महान॥
जय महावीर भगवान ..

५– भक्ति भरा मन मेरा, तोड़ रहा घेरा। प्रभु ...
तन्मय बनकर 'तुलसी' करू सदा सगान॥
जय महावीर भगवान

स्वर– आरती